



2026:AHC:43774-DB

ए.एफ.आर.

सुरक्षित : 16.01.2026

दिया गया : 26.02.2026

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या - 428/2025

हसनैन

...याची(गण)

बनाम

भारतीय संघ एवं 5 अन्य

...प्रत्यर्थी(गण)

याची के अधिवक्ता : सुशील कुमार

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता : मनीष पांडे, ए.एस.जी.आई., शासकीय अधिवक्ता

एवं २ अन्य संबद्ध वाद

न्यायालय संख्या - 48

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र धारी सिंह,
माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र सिंह-प्रथम,

द्वारा : माननीय न्यायमूर्ति चंद्र धारी सिंह,

1. इस न्यायालय के समक्ष राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 के अंतर्गत पारित निवारक निरोध आदेशों को चुनौती देने वाली तीन बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाएं हैं, जो जिला जालौन के कालपी शहर में कथित गोवंश वध की एक घटना से उत्पन्न हुई हैं, जिसके संबंध में निरोध प्राधिकारी ने यह पाया कि यह घटना चैत्र नवरात्रि के पहले दिन, जो कि ईद का ही दिन था, कारित की गई थी। निरोध प्राधिकारी ने पाया कि इस कृत्य ने लोक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया, कई मोहल्लों में सांप्रदायिक तनाव पैदा कर दिया, आम जनता के मन में भय और आतंक उत्पन्न कर दिया, और इसके भीतर सांप्रदायिक हिंसा का वास्तविक जोखिम अंतर्निहित था। याचिकाकर्ताओं का तर्क है कि उनका निरोध अवैध है, आधार अपर्याप्त हैं, और यह मामला अत्यधिक रूप से केवल कानून और व्यवस्था का है, न कि लोक व्यवस्था का। राज्य का तर्क है कि प्रत्येक संवैधानिक और वैधानिक सुरक्षात्मक उपायों का अनुपालन किया गया है और क्षेत्र में सांप्रदायिक सद्भाव बनाए रखने के लिए निरोध एक आवश्यक उपाय था। इन्हीं प्रतिस्पर्धी तर्कों पर इस न्यायालय को न्यायनिर्णयन करना है।

प्रस्तावना

2. व्यक्तिगत स्वतंत्रता सभी स्वतंत्रताओं में सबसे मौलिक है, जिससे अन्य सभी स्वतंत्रताएं जीवन पाती हैं। हमारा संविधान, अपनी गहन बुद्धिमत्ता में, इसकी पुरजोर रक्षा करता है। फिर भी वही संविधान, समान बुद्धिमत्ता के साथ, यह स्वीकार करता है कि ऐसे क्षण भी आते हैं जब समुदाय की सुरक्षा यह मांग करती है कि एक व्यक्ति की स्वतंत्रता उस शांति को बनाए रखने की महती आवश्यकता के सामने झुक जाए जिसमें अन्य सभी लोग अपना जीवन जीते हैं। निवारक निरोध वह गंभीर अपवाद है, जो अत्यधिक, असाधारण है और इसे कभी भी सामान्य नहीं होना चाहिए। यह एक ऐसी शक्ति है जिसे न्यायालयों ने हमेशा गहन संवीक्षा के साथ देखा है, क्योंकि जब राज्य बिना विचारण, बिना प्रमाण और

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



निर्दोषिता की उपधारणा के बिना निरुद्ध करता है, तो उसे सख्त जवाबदेही के दायरे में रखा जाना चाहिए। निवारक निरोध से जुड़े संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय केवल रूप में पालन की जाने वाली तकनीकी औपचारिकताएं नहीं हैं, वे एक संवैधानिक लोकतंत्र और मनमानी कार्यपालिका शक्ति के बीच की पतली लेकिन सुदृढ़ रेखा हैं। यह न्यायालय, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रहरी के रूप में, प्रत्येक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका पर इसी जागरूकता को पूरी तरह से मन में रखकर विचार करता है।

3. फिर भी स्वतंत्रता, चाहे कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो, शून्य में अस्तित्व में नहीं रहती। हमारे जैसा प्राचीन और विविधतापूर्ण देश अपने भीतर सांप्रदायिक सह-अस्तित्व के नाजुक बंधनों को संभालने की निरंतर जिम्मेदारी वहन करता है। जब कोई कृत्य जानबूझकर कारित किया जाता है और उसके लिए एक सटीक समय चुना जाता है, जो किसी समुदाय की सबसे पवित्र घड़ी में उसकी गहरी धार्मिक भावनाओं पर आघात करता है, तो वह उन बंधनों को त्वरित और विनाशकारी प्रभाव के साथ खंडित करने की क्षमता रखता है। निवारक निरोध का कानून, जब उचित सामग्री पर और संवैधानिक सुरक्षात्मक उपायों के पूर्ण अनुपालन में लागू किया जाता है, तो वह न केवल एक प्रशासनिक उद्देश्य की पूर्ति करता है बल्कि एक गहरे सामाजिक उद्देश्य की भी पूर्ति करता है, यानी जीवन की उस सुचारु गति को बनाए रखना जिसे जीने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है, ताकि वे उन लोगों से अशांत न हों जो अव्यवस्था फैलाने के लिए सांप्रदायिक संवेदनशीलता का दुरुपयोग करना चाहते हैं। इसी पृष्ठभूमि में यह न्यायालय आक्षेपित निरोध आदेशों की वैधता की जांच करने के लिए आगे बढ़ता है।

तथ्यात्मक मैट्रिक्स

4. यह मामला नीचे दिए गए विस्तृत तथ्यों से उत्पन्न हुआ है:

(i) दिनांक 31.03.2025 को, थाना कोतवाली कालपी, जिला जालौन में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई, जिसे उत्तर प्रदेश गो-वध निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 3/5/8, पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 की धारा 11 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 4/25 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 68/2025 के रूप में पंजीकृत किया गया। यह प्राथमिकी वर्तमान याचिकाकर्ताओं/निरुद्ध व्यक्तियों सिकंदर, सैय्याज अली और हसनैन सहित आठ अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध, उक्त थाने के क्षेत्राधिकार के भीतर गोवंश के कथित अवैध वध के संबंध में दर्ज की गई थी।

(ii) प्राथमिकी के कथानक के अनुसार, पुलिस कर्मी दिनांक 30.03.2025 को गश्त पर थे। यह आरोप है कि खेतों/झाड़ियों के बीच 7-8 व्यक्तियों द्वारा अवैध वध किए जाने की सूचना मिलने पर पुलिस दल मौके पर पहुंचा और उसने कथित तौर पर एक व्यक्ति को प्लास्टिक की बोरी में मांस भरते हुए तथा अन्य लोगों को कथित तौर पर पशुओं का वध करते हुए देखा। यह आगे आरोप है कि छापेमारी की गई और याचिकाकर्ता सिकंदर को पकड़ लिया गया, तथा सिकंदर से एक छुरा और लगभग 2-3 क्विंटल गोमांस/गोवंश का मांस बरामद किया गया, और यह भी आरोप है कि उसने सैय्याज अली और हसनैन के नामों का खुलासा किया।

(iii) याचिकाकर्ताओं का यह मामला है कि अभियोजन का संस्करण मुख्य रूप से सूचक और अन्य गवाहों के बयानों पर आधारित है, जो कि जैसा तर्क दिया गया है, पुलिस कर्मी हैं, और एकत्र की गई अन्वेषण सामग्री (बयानों और अन्य दस्तावेजों सहित) उस अभिलेख का हिस्सा थी जिसे निरोध प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था।

(iv) मुकदमा अपराध संख्या 68/2025 में अन्वेषण का समापन दिनांक 24.05.2025 के आरोप-पत्र के साथ हुआ। सिकंदर को दिनांक 31.03.2025 को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था, जबकि हसनैन ने

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



दिनांक 11.04.2025 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जालौन स्थान उरई के समक्ष आत्मसमर्पण किया था, और सैय्याज अली को दिनांक 04.04.2025 को न्यायिक अभिरक्षा में भेजा गया था।

(v) सैय्याज को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 300/2025 (सैय्याज अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में आदेश दिनांक 21.04.2025 द्वारा जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था। हसनैन को आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 313/2025 (हसनैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश दिनांक 25.04.2025 द्वारा जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था। सिकंदर के मामले में, यह कहा गया है कि उसका जमानत आवेदन आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 16469/2025 में लंबित था।

(vi) सिकंदर के संबंध में, क्षेत्राधिकारी, कालपी, जिला जालौन ने पुलिस अधीक्षक, जालौन को दिनांक 23.04.2025 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, और उसी तिथि को पुलिस अधीक्षक ने अपनी रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट, जालौन को प्रेषित की, जिसके पश्चात जिला मजिस्ट्रेट ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 28.04.2025 को निरोध आदेश पारित किया, जो सिकंदर द्वारा दायर वर्तमान याचिका में चुनौती के अधीन है।

(vii) सैय्याज अली के संबंध में, क्षेत्राधिकारी, कालपी, जिला जालौन ने पुलिस अधीक्षक, जालौन को दिनांक 26.04.2025 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, और उसी तिथि को पुलिस अधीक्षक ने अपनी रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट, जालौन को प्रेषित की, जिसके पश्चात जिला मजिस्ट्रेट ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 3(2) के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 28.04.2025 को निरोध आदेश पारित किया, जो सैय्याज अली द्वारा दायर याचिका में चुनौती के अधीन है।

(viii) हसनैन के संबंध में, क्षेत्राधिकारी, कालपी, जिला जालौन ने पुलिस अधीक्षक, जालौन को दिनांक 26.04.2025 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, और उसी तिथि को police अधीक्षक ने अपनी रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट, जालौन को प्रेषित की, जिसके पश्चात जिला मजिस्ट्रेट ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 3(2) के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 28.04.2025 को निरोध आदेश पारित किया, जो हसनैन द्वारा दायर याचिका में चुनौती के अधीन है।

(ix) निरोध आदेश पारित होने से पूर्व, गोपनीय अनुभाग से पुलिस अधीक्षक, जालौन को दिनांक 03.04.2025 को एक पत्र जारी किया गया था, जिसमें यह संकेत दिया गया था कि यदि याचिकाकर्ताओं को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो उनके द्वारा कथित अपराध को दोहराए जाने की संभावना है।

(x) दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 के निरोध आदेश जिला मजिस्ट्रेट, जालौन द्वारा थानाध्यक्ष, क्षेत्राधिकारी, अपर पुलिस अधीक्षक और पुलिस अधीक्षक, जिला जालौन की रिपोर्ट/इनपुट के आधार पर पारित किए गए थे।

(xi) निरोध आदेश की एक प्रति, निरोध के आधार और अन्य सभी संबंधित दस्तावेज, जैसा कि जिला मजिस्ट्रेट, जालौन से प्राप्त हुए थे, पत्र दिनांक 05.05.2025 द्वारा केंद्र सरकार को भी प्रेषित किए गए थे।

(xii) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत, राज्य सरकार ने दिनांक 05.05.2025 को परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष निरोध आदेश, वे आधार जिन पर आदेश दिया गया है और आनुषंगिक सामग्री रखी। याचिकाकर्ताओं ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत निरोध आदेशों को वापस लेने की मांग करते हुए दिनांक 07.05.2025/08.05.2025 को अभ्यावेदन/उत्तर प्रस्तुत किए। राज्य सरकार द्वारा उनका परीक्षण किया गया और अंततः दिनांक 20.05.2025/21.05.2025 को उन्हें अस्वीकार कर

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



दिया गया तथा अगले दिन सूचित किया गया। अभ्यावेदनों की प्रतियां भी परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष रखी गईं।

(xiii) उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड, लखनऊ ने पत्र दिनांक 26.05.2025 के माध्यम से राज्य सरकार को सूचित किया कि याचिकाकर्ता के मामले पर सुनवाई दिनांक 28.05.2025 को की जाएगी। बोर्ड ने आगे निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता को सूचित किया जाए कि यदि वह चाहे, तो वह एक "परम मित्र" (गैर-अधिवक्ता) के साथ उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष उपस्थित हो सकता है और अनुरोध करने पर, उसे ऐसे परम मित्र को अपने साथ ले जाने की अनुमति दी जा सकती है। तदनुसार, यह सूचना राज्य सरकार द्वारा पत्र दिनांक 26.05.2025 के माध्यम से जिला अधिकारियों के माध्यम से याचिकाकर्ता को भेजी गई थी। याचिकाकर्ता नियत तिथि पर उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष उपस्थित हुआ। उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड ने याचिकाकर्ता को व्यक्तिगत रूप से और साथ ही सरकारी अधिकारियों को सुना, और उसके बाद अपनी इस राय के साथ अपनी रिपोर्ट प्रेषित की कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत याचिकाकर्ता के निवारक निरोध के लिए पर्याप्त कारण मौजूद थे।

(xiv) अधिनियम की धारा 13 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उक्त रिपोर्ट पर कार्रवाई करते हुए, राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 12.06.2025 द्वारा निरोध आदेश की पुष्टि की और निरोध की तिथि से एक वर्ष की अवधि के लिए निरोध जारी रखने का निर्देश दिया।

(xv) दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 के निरोध आदेशों से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस माननीय न्यायालय की शरण ली है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, आक्षेपित निरोध आदेशों को रद्द करने और अपनी रिहाई की मांग की है।

तर्क

याचिकाकर्ताओं के तर्क

5. याचिकाकर्ताओं का वाद, संक्षेप में, यह है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाएं जिला मजिस्ट्रेट, जालौन द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के तहत पारित निरोध आदेश दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 को चुनौती देने के लिए दायर की गई हैं, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं को एक वर्ष की अवधि के लिए निरुद्ध करने का निर्देश दिया गया है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता उक्त आदेश के अनुपालन में अवैध अभिरक्षा में हैं और आक्षेपित निरोध आदेशों को रद्द करने के साथ-साथ एक बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने की मांग करते हैं जिससे यह निर्देश दिया जाए कि उन्हें स्वतंत्र किया जाए।

6. यह कहा गया है कि थाना कोतवाली कालपी, जिला जालौन में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 31.03.2025 को दर्ज की गई थी, जिसे गो-वध निवारण अधिनियम की धारा 3/5/8, पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 की धारा 11 और आयुध अधिनियम की धारा 4/25 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 68/2025 के रूप में याचिकाकर्ता और सात अन्य सह-अभियुक्तों के विरुद्ध पंजीकृत किया गया था।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता प्रथम सूचना रिपोर्ट की अंतर्वस्तु का संदर्भ देते हैं और तर्क देते हैं कि उन्हें उक्त वाद में झूठा फंसाया गया है। यह आगे तर्क दिया गया है कि अभियोजन का संस्करण सूचक और अन्य गवाहों के बयानों पर आधारित है, जो कि जैसा कि अभिवचन किया गया है, पुलिस कर्मी हैं।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



8. सिकंदर के वाद में, यह अभिवचन किया गया है कि उसे उपर्युक्त वाद में दिनांक 31.03.2025 को जेल भेजा गया था। यह आगे तर्क दिया गया है कि सैय्याज अली न तो मौके से पकड़ा गया था और न ही उसके कब्जे से कुछ बरामद हुआ था और वह दिनांक 04.04.2025 से जेल में बंद था; उसे आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 300/2025 (सैय्याज अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में आदेश दिनांक 21.04.2025 द्वारा जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था। हसनैन के वाद में, यह कहा गया है कि उसने दिनांक 11.04.2025 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जालौन स्थान उरई के समक्ष आत्मसमर्पण किया था और तब से वह उपर्युक्त वाद के संबंध में जेल में है; उसे आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 313/2025 (हसनैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश दिनांक 25.04.2025 द्वारा जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था।

9. यह आगे तर्क दिया गया है कि मुकदमा अपराध संख्या 68/2025 में अन्वेषण पूरा हो चुका है और दिनांक 24.05.2025 को आरोप-पत्र दाखिल कर दिया गया है। यह भी अभिवचन किया गया है कि उपर्युक्त वाद के अतिरिक्त याचिकाकर्ताओं का कोई अन्य आपराधिक इतिहास नहीं है।

10. जहाँ तक निरोध की कार्यवाहियों का संबंध है, यह कहा गया है कि थानाध्यक्ष ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत याचिकाकर्ता के निरोध के संबंध में पुलिस अधीक्षक को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। यह आगे कहा गया है कि क्षेत्राधिकारी और अपर पुलिस अधीक्षक ने भी पुलिस अधीक्षक को रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिन्होंने तब अधिनियम की धारा 3(2) के अंतर्गत आदेश पारित करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट प्रेषित की, जिसके अनुक्रम में जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 को आक्षेपित निरोध आदेश पारित किए।

11. उपर्युक्त अभिवचनों के आधार पर, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि निरोध आदेश कानून की नजर में दोषपूर्ण हैं। यह आगे अभिवचन किया गया है कि आक्षेपित आदेश बिना उचित सोच-विचार के पारित किए गए हैं। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 के अतिक्रमण का भी आरोप लगाते हैं।

12. तदनुसार, यह प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय प्रार्थीगण को स्वतंत्र करने का निर्देश देते हुए प्रत्यर्थागण को बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने की कृपा करे और जिला मजिस्ट्रेट, जालौन द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के अंतर्गत पारित निरोध आदेश दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 को रद्द करे।

प्रत्यर्थागण के तर्क

13. प्रत्यर्थागण/राज्य के विद्वान अधिवक्तागण तर्क देते हैं कि थाना कोतवाली कालपी, जिला जालौन में उत्तर प्रदेश गो-वध निवारण अधिनियम, 1955 की धारा 3/5/8, पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 की धारा 11 और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 4/25 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 68/2025 के रूप में एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 31.03.2025 को आठ अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज की गई थी, जिनमें निरुद्ध याचिकाकर्ता सिकंदर, सैय्याज अली और हसनैन शामिल हैं। यह कहा गया है कि उपर्युक्त वाद में सिकंदर दिनांक 31.03.2025 से, सैय्याज अली दिनांक 04.04.2025 से और हसनैन दिनांक 11.04.2025 से न्यायिक अभिरक्षा में हैं। अन्वेषण के पश्चात, निरुद्ध याचिकाकर्ताओं सहित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत कर दिया गया है।

14. यह तर्क दिया गया है कि गोमांस की एक बड़ी मात्रा (लगभग तीन क्विंटल) बरामद की गई थी, और मवेशी बंधे हुए पाए गए थे तथा हड्डियां/खाल/हथियार भी बरामद किए गए थे। एक निरुद्ध व्यक्ति को

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



मौके पर ही पकड़ लिया गया था जबकि अन्य भाग गए थे। इस घटना ने, इसके विस्तार और स्थानीय प्रभाव को देखते हुए, क्षेत्र और उसके आसपास भय और तनाव पैदा कर दिया और सांप्रदायिक सद्भाव को बिगाड़ दिया, जिससे लोक व्यवस्था प्रभावित हुई, न कि केवल कानून और व्यवस्था।

15. निरोध प्राधिकारी/जिला मजिस्ट्रेट, जालौन ने याचिकाकर्ताओं/निरुद्ध व्यक्तियों के विरुद्ध राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(2) के अंतर्गत पृथक निरोध आदेश पारित किए। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्तागण ने कहा कि उक्त निरोध आदेशों को राज्य सरकार द्वारा अधिनियम, 1980 की धारा 3(4) के अंतर्गत विहित अवधि के भीतर दिनांक 03.05.2025 को अनुमोदित किया गया था।

16. यह तर्क दिया गया है कि मामला उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड, लखनऊ के समक्ष रखा गया था। निरुद्ध व्यक्तियों को एक परम मित्र के साथ परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष उपस्थित होने के लिए सूचित किया गया था। निरुद्ध व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और उन्हें दिनांक 28.05.2025 को सुना गया। परामर्शदाता बोर्ड ने तत्पश्चात यह राय दी कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के निवारक निरोध के लिए पर्याप्त कारण मौजूद हैं। राज्य सरकार को अधिनियम, 1980 की धारा 11(1) के अंतर्गत विचारित समय के भीतर दिनांक 05.06.2025 को परामर्शदाता बोर्ड की रिपोर्ट/राय प्राप्त हुई, और संपूर्ण सामग्री पर स्वतंत्र रूप से पुनर्विचार करने के बाद, राज्य सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 12 और 13 के अंतर्गत दिनांक 25.04.2025 से बारह महीनों के लिए निरोध आदेशों की पुष्टि की।

17. यह कहा गया है कि निरोध के आधार घटना और प्रत्येक निरुद्ध व्यक्ति से संबंधित गतिविधियों को अलग-अलग प्रकट करते हैं। निरोध प्राधिकारी ने ठोस सामग्री के आधार पर यह संतोष दर्ज किया है कि (i) निरुद्ध व्यक्ति जमानत प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे और उनकी रिहाई की वास्तविक संभावना थी, तथा (ii) रिहा होने पर, उनके लोक व्यवस्था के अनुरक्षण के प्रतिकूल गतिविधियों में संलिप्त होने की संभावना थी।

18. यह तर्क दिया गया है कि निवारक निरोध पर लागू होने वाली संपूर्ण प्रक्रिया का उचित अनुपालन किया गया है। निरोध आदेश, निरोध के आधार और जिन सामग्रियों पर भरोसा किया गया था, वे विधिवत तामील की गई थीं। निरुद्ध व्यक्तियों ने दिनांक 08.05.2025 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किए थे, जिन पर उचित समय के भीतर कार्रवाई की गई जैसा कि संबंधित प्रति-हलफनामों में परिलक्षित होता है। यह कहा गया है कि सैय्याज अली और हसनैन के अभ्यावेदन दिनांक 20.05.2025 को अस्वीकार कर दिए गए थे, और सिकंदर का अभ्यावेदन दिनांक 21.05.2025 को अस्वीकार कर दिया गया था, जिसके बाद निरुद्ध व्यक्तियों को सूचित किया गया था।

19. पूर्वगामी को देखते हुए, यह तर्क दिया गया था कि निरोध आदेश प्रासंगिक सामग्री पर आधारित हैं और इनमें विशिष्ट आधार शामिल हैं। ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो दुर्भावना या अस्पष्टता को दर्शाती हो। निरोध प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया आत्मनिष्ठ संतोष, ठोस सामग्री पर आधारित होने के कारण, सुस्थापित आधारों के अतिरिक्त बंदी प्रत्यक्षीकरण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप के योग्य नहीं है, जो कि यहाँ स्थापित नहीं किए गए हैं।

20. इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तागण द्वारा यह प्रार्थना की गई कि उपर्युक्त तथ्यों और प्रत्येक चरण में वैधानिक अनुपालन को ध्यान में रखते हुए, और परामर्शदाता बोर्ड की राय तथा लोक व्यवस्था के भंग होने को प्रदर्शित करने वाली सामग्री पर विचार करते हुए, राज्य

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



सम्मानपूर्वक यह तर्क देता है कि वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाएं गुणहीन हैं और खारिज किए जाने योग्य हैं।

21. तर्कों के अनुक्रम में, प्रत्यर्थागण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तागण ने निर्णयों की प्रचुरता पर भरोसा जताया, जिनमें निम्नलिखित शामिल हैं:

पेसाला नूकाराजू बनाम आंध्र प्रदेश सरकार
कार्तिक चंद्र गुहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य
अलिजान मियां बनाम जिला मजिस्ट्रेट, धनबाद
योगेंद्र मुरारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
एन. मीरा रानी बनाम तमिलनाडु सरकार
अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य
रईसुद्दीन उर्फ बाबू ममची
अशोक कुमार बनाम दिल्ली प्रशासन
डॉ. राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य
हेचिन हाओकिप बनाम मणिपुर राज्य
ए. मैमूना बनाम तमिलनाडु राज्य

22. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार, प्रत्यर्था संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष पांडेय, उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री एस.के. ओझा को सुना और मामले के अभिलेख का अवलोकन किया।

निवारक निरोध एवं न्यायिक समीक्षा

23. विचारणीय प्रश्नों पर आने से पहले, और आक्षेपित निरोध आदेशों की वैधता की जांच करने से पूर्व, यह न्यायालय निवारक निरोध को शासित करने वाले सुस्थापित सिद्धांतों को दोहराना उचित समझता है, अर्थात्, वह उद्देश्य और तर्क जिसके लिए ऐसी असाधारण शक्ति का आह्वान किया जा सकता है, वे आवश्यक आवश्यकताएं जो एक वैध निरोध आदेश को सूचित और समर्थित करनी चाहिए, और ऐसी कार्यकारी संतुष्टि पर बंदी प्रत्यक्षीकरण में न्यायिक समीक्षा की सीमित लेकिन सख्त रूपरेखा।

निवारक निरोध की अवधारणा

24. निवारक निरोध की आवश्यक परिभाषित विशेषता यह है कि यह प्रतिबंध किसी व्यक्ति को उसके द्वारा पहले किए गए किसी कार्य के लिए दंडित करने के लिए नहीं लगाया जाता है, बल्कि उसे भविष्य में ऐसा करने से रोकने के लिए लगाया जाता है। ऐसे निरोध का आधार कार्यकारी संतुष्टि है, जो प्रासंगिक सामग्री के आधार पर, यह मानती है कि निरुद्ध व्यक्ति के अपने पिछले आचरण के समान तरीके से कार्य करने की उचित संभावना है, और यह कि ऐसे प्रत्याशित आचरण को रोकने के लिए उसका निरोध आवश्यक है। निवारक निरोध के मामलों में, पिछला कृत्य केवल निरुद्ध व्यक्ति की ओर से संभावित आचरण के भविष्य के मार्ग के बारे में अनुमान लगाने के लिए सामग्री है। निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उसके द्वारा किए गए किसी गलत कार्य के लिए दंडित करना नहीं है, बल्कि भविष्य में उसे कुछ हानिकारक गतिविधियों को करने से रोकने की दृष्टि से उसकी स्वतंत्रता को कम करना है। इस प्रकार निवारक निरोध निवारक है, दंडात्मक नहीं।

25. कानून की अदालत में कार्यवाही और 1980 के अधिनियम के तहत निरोध आदेश अलग-अलग क्षेत्रों में संचालित होते हैं: पहला दंडात्मक है, जबकि दूसरा निवारक है। अभियोजन में, दंड केवल अपराध के

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



सबूत पर मिलता है, जिसे उचित संदेह से परे सबूत के मानक पर परखा जाता है; निवारक निरोध में, प्रतिबंध इस दृष्टि से लगाया जाता है कि ऐसी प्रकृति के कार्यों को करने से रोका जा सके जिनकी परिकल्पना ऐसे निरोध को अधिकृत करने वाला कानून करता है।

26. इस प्रकार निवारक निरोध दंडात्मक निरोध से गुणात्मक रूप से भिन्न है। यह उचित प्रत्याशा में प्रयोग की जाने वाली एक एहतियाती शक्ति है, और यह किसी विशिष्ट अपराध से जुड़ी हो भी सकती है और नहीं भी। यह आपराधिक अभियोजन का न तो विकल्प है और न ही इसके समानांतर है, और यह केवल इसलिए इसके साथ ओवरलैप नहीं करता है क्योंकि यह कुछ ऐसे तथ्यों पर आधारित हो सकता है जो अभियोजन का आधार भी बन सकते हैं। एक निवारक निरोध आदेश अभियोजन से पहले, या उसके दौरान किया जा सकता है; यह अभियोजन के साथ या उसके बिना किया जा सकता है; और यह दोषमुक्ति या बरी होने के बाद भी किया जा सकता है। अभियोजन का लंबित होना निवारक निरोध आदेश पारित करने में कोई बाधा नहीं है, ठीक वैसे ही जैसे एक निरोध आदेश अभियोजन के लिए बाधा के रूप में कार्य नहीं करता है।

27. संविधान का अनुच्छेद 22(1) और (2) कानून की अदालत द्वारा जारी वारंट के अलावा, मनमानी गिरफ्तारी के खिलाफ व्यक्ति को सुरक्षा की गारंटी देता है, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण और मौलिक है। फिर भी, इस प्रकार गारंटीकृत सुरक्षा अनुच्छेद 22 के खंड (3) के अधीन है जो खंड (1) और (2) के अपवाद के रूप में कार्य करता है और यह निर्धारित करता है कि उसमें कुछ भी, अन्य बातों के साथ-साथ, किसी ऐसे व्यक्ति पर लागू नहीं होगा जिसे निवारक निरोध का प्रावधान करने वाले किसी कानून के तहत गिरफ्तार या निरुद्ध किया गया है। निवारक निरोध का उद्देश्य, जैसा कि हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य¹² में वर्णित है, राज्य की सुरक्षा और संरक्षा, तथा राष्ट्र के कल्याण को खतरे में डालने वाले तत्वों की अधिक बड़ी बुराई को रोकना है। निवारक निरोध, हालांकि एक कठोर और भयावह उपाय है, स्वयं संविधान द्वारा अनुमति प्राप्त है, हालांकि उसी लेख के पाठ में निहित सुरक्षा उपायों के साथ, और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा न्यायिक निर्णयों के माध्यम से तराशे गए राइडर्स के साथ जो समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं।

28. यह सुस्थापित है कि कार्यपालिका उचित संदेह के आधार पर और एक एहतियाती उपाय के रूप में निवारक निरोध का सहारा ले सकती है, ताकि प्रस्तावित निरुद्ध व्यक्ति द्वारा उन प्रत्याशित कृत्यों को टाला जा सके जो एक वैध रूप से अधिनियमित कानून के तहत निर्दिष्ट वैधानिक उद्देश्यों के लिए हानिकारक हैं। चूंकि एक निवारक निरोध आदेश संदेह पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता में गंभीर कटौती करता है, यह दंडात्मक के बजाय निवारक है, और चूंकि निरोध प्राधिकारी की आत्मनिष्ठ संतुष्टि, जो उसके समक्ष सामग्री पर आधारित है, सामान्यतः गुण-दोष के आधार पर न्यायिक संवीक्षा के योग्य नहीं है, संवैधानिक न्यायालय इस बात पर अपील में नहीं बैठते हैं कि क्या प्रत्येक तथ्यात्मक पहलू पर ऐसी संतुष्टि सही ढंग से पहुंची है या क्या तथ्यों के पुनर्मूल्यांकन पर निरोध उचित है। इसलिए राहत देने का दायरा अनिवार्य रूप से सीमित है। ठीक इसी कारण से, यह अनिवार्य है कि ऐसी असाधारण और कठोर शक्ति का आह्वान केवल उपयुक्त मामलों में किया जाए और उचित जिम्मेदारी, तर्कसंगतता और औचित्य के साथ प्रयोग किया जाए।

29. साथ ही, निवारक निरोध आदेश के तहत स्वतंत्रता से वंचित करने के गंभीर परिणाम को देखते हुए, जिसे अक्सर निरुद्ध व्यक्ति को पहले अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिए बिना लागू किया जाता है, संवैधानिक न्यायालयों ने, प्रहरी के रूप में, लगातार हस्तक्षेप किया है ताकि निरोध आदेशों को रद्द

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



किया जा सके जब भी उन्हें न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे के भीतर किसी कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त दुर्बलता से पीड़ित पाया जाता है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट

30. बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्राचीन विशेषाधिकार रिट अपना नाम दो अनिवार्य शब्दों "हेबियस" और "कॉर्पस" से लेती है। "हेबियस कॉर्पस" का शाब्दिक अर्थ है "शरीर को प्रस्तुत करें"। इन रिटों का सामान्य उद्देश्य जैसा कि उनके नाम से पता चलता है, व्यक्ति को अदालत या न्यायाधीश के समक्ष पेश करना था। यह जेल या निजी अभिरक्षा में अवैध या अनुचित निरोध से तत्काल रिहाई के प्रभावी उपाय प्रदान करके विषय की स्वतंत्रता सुरक्षित करने के लिए एक विशेषाधिकार प्रक्रिया है। यह इतनी संप्रभु और उत्कृष्ट अधिकार की रिट है कि शक्ति या स्थान का कोई भी विशेषाधिकार इसके खिलाफ खड़ा नहीं हो सकता है। सभी संवैधानिक न्यायविदों के अनुसार, यह न केवल निजी व्यक्तियों बल्कि कार्यपालिका के मनमानी कृत्यों के खिलाफ व्यक्ति का एक बहुत शक्तिशाली सुरक्षा उपाय है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा सुरक्षा उपाय है। यह रिट एक विशेषाधिकार वाली रिट है जिसे अपनी प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

31. हल्सबरी के इंग्लैंड के कानूनों में, यह निम्नानुसार कहा गया है:

"बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट अन्य रिटों के विपरीत, एक विशेषाधिकार रिट है, अर्थात्, यह एक असाधारण उपाय है, जिसे उन मामलों में कारण दिखाए जाने पर जारी किया जाता है जहां सामान्य कानूनी उपाय लागू नहीं होते या अपर्याप्त हैं। यह रिट अधिकार की रिट है और (न्याय के ऋण के रूप में) दी जाती है। हालांकि, यह सामान्य रिट नहीं है। सामान्य कानून और कानून दोनों के तहत, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट केवल इसके जारी होने के लिए उचित आधार दिखाए जाने पर ही दी जा सकती है। यह रिट सामान्य तौर पर केवल इसलिए नहीं नकारी जा सकती क्योंकि निरोध की वैधता पर सवाल उठाने के लिए कोई वैकल्पिक उपाय मौजूद है। "कोई भी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अवैध कारावास से मुक्त करने के उद्देश्य से बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट प्राप्त करने के लिए कार्यवाही शुरू करने का हकदार है और जो कोई भी कानूनी रूप से किसी अन्य की अभिरक्षा का हकदार है, वह अभिरक्षा वापस पाने के लिए रिट के लिए आवेदन कर सकता है। किसी भी मामले में, जहां किसी व्यक्ति को अनुचित रूप से निरुद्ध माना गया है और उस तक पहुंच से इनकार किया जाता है, ताकि कैदी से कोई निर्देश न मिल सके, तो आवेदन किसी भी संबंधी या मित्र द्वारा एक हलफनामे पर किया जा सकता है जिसमें इसे बनाने का कारण बताया गया हो।"

32. कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम में, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट की प्रकृति का सारांश इस प्रकार है:

"बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट उस व्यक्ति को संबोधित रिट है जो किसी अन्य को निरुद्ध कर रहा है, जो उसे आदेश देती है कि वह कैदी के शरीर को एक निर्दिष्ट समय और स्थान पर उसकी गिरफ्तारी और निरोध के दिन और कारण के साथ प्रस्तुत करे, ताकि अदालत या न्यायाधीश जो रिट प्रदान कर रहा है, वह उस संबंध में जो कुछ भी उचित समझे, उसका पालन करे और स्वीकार करे।" "हेबियस कॉर्पस" का शाब्दिक अर्थ है "शरीर को प्रस्तुत करें"। इस रिट के द्वारा, अदालत निरुद्ध व्यक्ति के शरीर को अपने समक्ष लाने का निर्देश दे सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि निरोध कानूनी है या अवैध। एंग्लो-सैक्सन न्यायशास्त्र में रिट की यह प्रमुख स्थिति है।"

33. इंग्लैंड में, रिट देने का क्षेत्राधिकार सामान्य कानून में मौजूद था, लेकिन इसे कानून द्वारा मान्यता प्राप्त और विस्तारित किया गया है। इंग्लैंड में यह भली-भांति स्थापित है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अधिकार के रूप में है और अदालत के पास इसे अस्वीकार करने का कोई विवेक नहीं है। उत्प्रेषण या परमादेश के विपरीत, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट प्रत्येक ऐसे व्यक्ति का अधिकार है जिसे अवैध रूप से निरुद्ध किया गया है। भारत में, यह वही विशेषाधिकार रिट है जिसे संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत संवैधानिक दर्जा दिया गया है। इसलिए, यह इस देश के नागरिक के लिए उपलब्ध एक असाधारण उपाय है, जिसे वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 32 के तहत लागू कर सकता है।

34. यह रिट अदालतों का कर्तव्य है कि वे मनमाने और अवैध निरोध के खिलाफ नागरिक की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए इस रिट को जारी करें। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक उपाय है जिसे अवैध रूप से निरुद्ध व्यक्तियों की रिहाई की सुविधा के लिए डिज़ाइन किया गया है, न कि निरोध करने वाले व्यक्ति को दंडित करने के लिए, और इसलिए, यह उस निरोध के समाप्त होने के बाद जारी नहीं किया जाता है जिसके बारे में शिकायत की गई है। यह अवैध निरोध के खिलाफ एक उपाय है। यह उस व्यक्ति को बुलाने वाले आदेश के रूप में जारी किया जाता है जिसने दूसरे को निरुद्ध किया है, चाहे जेल में हो या निजी अभिरक्षा में, कि वह उस दूसरे के "शरीर को" अदालत के समक्ष "प्रस्तुत करे" ताकि अदालत को यह पता चल सके कि उसे किस आधार पर सीमित किया गया है और इस प्रकार अदालत को उस मामले से निपटने का अवसर मिल सके जैसा कि कानून की आवश्यकता हो। बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट द्वारा, अदालत किसी भी ऐसे व्यक्ति को जिसे कैद किया गया है, अदालत के समक्ष ला सकती है और उस कारण का ज्ञान प्राप्त कर सकती है कि उसे क्यों कैद किया गया है और फिर या तो उसे तुरंत मुक्त कर सकती है यदि कारावास के लिए कोई कानूनी औचित्य नहीं है, या देख सकती है कि उसे शीघ्रता से विचारण के लिए लाया जाए। बंदी प्रत्यक्षीकरण किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ उपलब्ध है जिस पर किसी अन्य को अवैध रूप से निरुद्ध करने का संदेह है, न कि केवल पुलिस या अन्य सार्वजनिक अधिकारियों के खिलाफ जिनके कर्तव्यों में सामान्यतः गिरफ्तारी और निरोध शामिल है। अदालत को इसे जारी करना चाहिए यदि यह दिखाया गया है कि जिस व्यक्ति की ओर से इसे मांगा गया है, उसे अवैध रूप से उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया गया है। रिट किसी भी ऐसे व्यक्ति को संबोधित की जा सकती है जो एक अधिकारी या एक निजी व्यक्ति है जिसके पास कोई दूसरा उसकी अभिरक्षा में है।

35. बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट केवल एक विशिष्ट जेलर को संबोधित एक न्यायिक आदेश है जो उसे नामित कैदी को निरोध के कानूनी कारण के साथ प्रस्तुत करने का निर्देश देता है ताकि निरोध के इस कानूनी वारंट की जांच की जा सके। उक्त निरोध कानूनी या अवैध हो सकता है। जिस अधिकार को ऐसी रिट द्वारा लागू करने की मांग की जाती है, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत नागरिक का एक मौलिक अधिकार है, जो प्रदान करता है: "21. जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा। किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।"

राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 के तहत योजना और प्रासंगिक प्रावधान

36. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 के प्रासंगिक प्रावधानों को निम्नलिखित पैराग्राफों में स्थापित किया गया है, ताकि अधिनियम के अंतर्गत निवारक निरोध के उद्देश्य और योजना, तथा उन वैधानिक सुरक्षा उपायों, जो ऐसी असाधारण शक्ति के प्रयोग को विनियमित करते हैं, दोनों को दर्शाया जा सके। दीर्घ नाम और उद्देश्यों और कारणों का कथन यह स्पष्ट करते हैं कि संसद ने इस अधिनियम को रक्षा, सुरक्षा, लोक व्यवस्था और आवश्यक आपूर्ति/सेवाओं को प्रभावित करने वाली गंभीर परिस्थितियों से

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



निपटने के लिए एक असाधारण उपाय के रूप में परिकल्पित किया था, और साथ ही शासकीय संवीक्षा तथा परामर्शदाता बोर्ड की निगरानी के माध्यम से संस्थागत नियंत्रणों को इसमें समाहित किया था। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 का दीर्घ नाम और उद्देश्यों और कारणों का कथन नीचे उद्धृत किया गया है:

"कतिपय मामलों में निवारक निरोध और उससे संबंधित मामलों का उपबंध करने के लिए अधिनियम भारत गणराज्य के बत्तीसवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो:—

उद्देश्यों और कारणों का कथन—सांस्कृतिक वैमनस्य, सामाजिक तनावों, उग्रवादी गतिविधियों, औद्योगिक अशांति की तत्कालीन स्थिति और विभिन्न स्वार्थी पक्षों द्वारा भिन्न-भिन्न मुद्दों पर आंदोलनों को भड़काने की बढ़ती प्रवृत्ति को देखते हुए, यह आवश्यक समझा गया कि देश में कानून और व्यवस्था की स्थिति से अत्यंत दृढ़ और प्रभावी तरीके से निपटा जाए। सामाजिक-विरोधी और राष्ट्र-विरोधी तत्व, जिनमें अलगाववादी सांप्रदायिक और जाति-समर्थक तत्व शामिल हैं, और अन्य तत्व भी जो समुदाय के लिए आवश्यक सेवाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं और उन पर असर डालते हैं, वैध प्राधिकारी के समक्ष एक गंभीर चुनौती पेश करते हैं और कभी-कभी समाज को बंधक बना लेते हैं।

2. समस्याओं की जटिलता और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, विशेष रूप से रक्षा, सुरक्षा, लोक व्यवस्था और समुदाय के लिए आवश्यक सेवाओं के संबंध में, सरकार का यह सुविचारित दृष्टिकोण है कि निवारक निरोध की शक्तियों के अभाव में प्रशासन को इनसे प्रभावी ढंग से निपटने में अत्यधिक कठिनाई होगी। इसलिए, राष्ट्रपति द्वारा 22 सितंबर, 1980 को राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश, 1980 प्रख्यापित किया गया था।

3. एक संशोधन के अधीन, यह विधेयक उपरोक्त अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने का प्रयास करता है। यह संशोधन परामर्शदाता बोर्डों के गठन से संबंधित है, और इसका उद्देश्य यह प्रावधान करना है कि परामर्शदाता बोर्ड का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा जो किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है, या रहा है, और परामर्शदाता बोर्ड के अन्य सदस्य ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं, या रहे हैं, या नियुक्त होने के लिए अर्हित हैं।"

37. धारा 3 इस अधिनियम की निवारक निरोध शक्ति का मूल वैधानिक स्रोत है। यह केंद्रीय/राज्य सरकार को निर्दिष्ट आधारों पर निरोध का आदेश देने के लिए अधिकृत करती है, और विशेष रूप से धारा 3(2) के अंतर्गत, जहां किसी व्यक्ति को राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था के अनुरक्षण, या समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्तियों और सेवाओं के अनुरक्षण के प्रतिकूल कार्य करने से रोकने के लिए निरोध आवश्यक समझा जाता है। राज्य सरकार धारा 3(3) के अंतर्गत सीमित अवधियों के लिए इस शक्ति को जिला मजिस्ट्रेट/पुलिस आयुक्त को भी प्रत्यायोजित कर सकती है। जहां इस प्रकार सशक्त कोई अधिकारी निरोध आदेश पारित करता है, तो धारा 3(4) राज्य सरकार को तत्काल रिपोर्ट करने का आदेश देती है और ऐसा आदेश अल्पकालिक होता है जब तक कि विहित समय के भीतर राज्य सरकार द्वारा इसे अनुमोदित न कर दिया जाए; इसके पश्चात धारा 3(5) के तहत निर्धारित अवधि के भीतर केंद्र सरकार को रिपोर्ट करना आवश्यक होता है। संदर्भ के लिए धारा 3 नीचे उद्धृत की गई है:

"3. कतिपय व्यक्तियों को निरुद्ध करने के आदेश करने की शक्ति—(1) केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार,—

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



(क) यदि उसका किसी व्यक्ति के संबंध में यह समाधान हो जाता है कि उसे भारत की रक्षा, विदेशी शक्तियों के साथ भारत के संबंधों या भारत की सुरक्षा के प्रतिकूल किसी भी रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से, या

(ख) यदि उसका किसी विदेशी के संबंध में यह समाधान हो जाता है कि भारत में उसकी निरंतर उपस्थिति को विनियमित करने की दृष्टि से या भारत से उसके निष्कासन के लिए प्रबंध करने की दृष्टि से,

ऐसा करना आवश्यक है, तो यह निर्देश देने वाला आदेश कर सकेगी कि ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध किया जाए।

(2) केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार, यदि उसका किसी व्यक्ति के संबंध में यह समाधान हो जाता है कि उसे राज्य की सुरक्षा के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने से या लोक व्यवस्था के अनुरक्षण के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने से या समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्तियों और सेवाओं के अनुरक्षण के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक है, तो यह निर्देश देने वाला आदेश कर सकेगी कि ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध किया जाए।

स्पष्टीकरण—इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, “समुदाय के लिए आवश्यक आपूर्तियों और सेवाओं के अनुरक्षण के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने” के अंतर्गत चोरबाजारी निवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय बनाए रखना अधिनियम, 1980 (1980 का 7) की धारा 3 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण में यथापरिभाषित “समुदाय के लिए आवश्यक वस्तुओं की प्रदाय के अनुरक्षण के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करना” नहीं आता है, और तदनुसार, इस अधिनियम के अधीन निरोध का कोई भी आदेश ऐसे किसी आधार पर नहीं किया जाएगा जिस पर उस अधिनियम के अधीन निरोध का आदेश किया जा सकता है।

(3) यदि किसी क्षेत्र में प्रचलित या प्रचलित होने की संभावना वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जो किसी जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त के स्थानीय क्षेत्राधिकार की सीमाओं के भीतर हैं, राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक है, तो वह लिखित आदेश द्वारा यह निर्देश दे सकेगी कि ऐसी अवधि के दौरान जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, ऐसा जिला मजिस्ट्रेट या पुलिस आयुक्त भी, यदि उसका उपधारा (2) में उपबंधित रूप में समाधान हो जाता है, उक्त उपधारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा:

परंतु इस उपधारा के अधीन राज्य सरकार द्वारा किए गए आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि, प्रथमतः, तीन महीने से अधिक नहीं होगी, लेकिन राज्य सरकार, यदि उसका उपर्युक्त रूप में यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक है, तो समय-समय पर ऐसे आदेश में संशोधन करके ऐसी अवधि को एक बार में तीन महीने से अनधिक की किसी अवधि के लिए बढ़ा सकेगी।

(4) जब उपधारा (3) में उल्लिखित किसी अधिकारी द्वारा इस धारा के अधीन कोई आदेश किया जाता है, तो वह उस तथ्य की रिपोर्ट, उन आधारों के सहित जिन पर वह आदेश किया गया है और ऐसे अन्य विवरणों के सहित जिनका, उसकी राय में, इस मामले पर प्रभाव पड़ता है, उस राज्य सरकार को तत्काल करेगा जिसके वह अधीनस्थ है, और ऐसा कोई भी आदेश किए जाने के पश्चात बारह दिन से अधिक की अवधि के लिए प्रवृत्त नहीं रहेगा जब तक कि इस बीच राज्य सरकार द्वारा उसका अनुमोदन न कर दिया गया हो:

परंतु जहां धारा 8 के अधीन निरोध के आधार, आदेश करने वाले अधिकारी द्वारा निरोध की तिथि से पांच दिन के पश्चात किंतु दस दिन से अनधिक के भीतर संसूचित किए जाते हैं, वहां यह उपधारा इस

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



संशोधन के अधीन रहते हुए लागू होगी कि “बारह दिन” शब्दों के स्थान पर “पंद्रह दिन” शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(5) जब राज्य सरकार द्वारा इस धारा के अधीन कोई आदेश किया जाता है या अनुमोदित किया जाता है, तब राज्य सरकार सात दिन के भीतर उस तथ्य की रिपोर्ट, उन आधारों के सहित जिन पर आदेश किया गया है और ऐसे अन्य विवरणों के सहित, जिनका राज्य सरकार की राय में आदेश की आवश्यकता पर प्रभाव पड़ता है, केंद्रीय सरकार को करेगी।”

38. धारा 5क आधारों की पृथक्करणीयता के सिद्धांत को समाविष्ट करती है। जहां धारा 3 के अंतर्गत कोई निरोध आदेश दो या अधिक आधारों पर दिया जाता है, वहां कानून यह मानता है कि आदेश प्रत्येक आधार पर पृथक् रूप से दिया गया है, जिससे कि आदेश केवल इसलिए स्वतः ही निष्प्रभावी नहीं हो जाता कि कोई एक आधार अस्पष्ट, अस्तित्वहीन, अप्रासंगिक, सन्निकट नहीं या अन्यथा अवैध है। इस प्रकार यह प्रावधान निरोध आदेश को केवल इस आधार पर रद्द होने से रोकता है कि बहुविध आधारों में से कोई एक दोषपूर्ण है, बशर्ते कि शेष आधार स्वतंत्र रूप से अपेक्षित संतुष्टि को बनाए रख सकते हों। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

“5-क. निरोध के आधारों का पृथक्करणीय होना—जहां किसी व्यक्ति को धारा 3 के अधीन किसी ऐसे निरोध आदेश के अनुसरण में निरुद्ध किया गया है [चाहे वह राष्ट्रीय सुरक्षा (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1984 के प्रारंभ से पहले या बाद में किया गया हो] जो दो या अधिक आधारों पर किया गया है, वहां ऐसा निरोध आदेश उन आधारों में से प्रत्येक पर पृथक् रूप से किया गया समझा जाएगा और तदनुसार—

(क) ऐसा आदेश केवल इस कारण अवैध या अक्रियाशील नहीं समझा जाएगा कि उन आधारों में से कोई एक या कुछ आधार—

(i) अस्पष्ट हैं,

(ii) अस्तित्वहीन हैं,

(iii) प्रासंगिक नहीं हैं,

(iv) ऐसे व्यक्ति से संबंधित या सन्निकट रूप से संबंधित नहीं हैं, या

(v) किसी अन्य कारण से भी अवैध हैं,

और इसलिए यह निर्णय करना संभव नहीं है कि ऐसा आदेश करने वाली सरकार या अधिकारी का शेष आधार या आधारों के संदर्भ में धारा 3 में उपबंधित रूप में समाधान हो गया होता और उसने निरोध का आदेश किया होता;

(ख) निरोध का आदेश करने वाली सरकार या अधिकारी के संबंध में यह समझा जाएगा कि उसने शेष आधार या आधारों के संदर्भ में उस धारा में उपबंधित रूप में समाधान होने के पश्चात उक्त धारा के अधीन निरोध का आदेश किया है।”

39. धारा 8 जब किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जाता है, तब निरोध प्राधिकारी द्वारा निरुद्ध व्यक्ति को यथाशीघ्र, सामान्यतः पांच दिनों के भीतर (और असाधारण परिस्थितियों में, अधिनियम में विनिर्दिष्ट विस्तारित अवधि के भीतर) निरोध के आधार संसूचित किए जाने की आवश्यकता प्रस्तुत करके और निरुद्ध व्यक्ति को उपयुक्त सरकार के समक्ष आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का शीघ्रतम अवसर प्रदान करके अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत संवैधानिक सुरक्षात्मक उपायों को क्रियान्वित करती है। धारा 8(2) एक सीमित विशेषाधिकार को सुरक्षित रखती है जो उन तथ्यों को प्रकट न करने की

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अनुमति देता है जिनका प्रकटीकरण लोक हित के विरुद्ध माना जाता है, जबकि एक प्रभावी अभ्यावेदन को सक्षम करने के लिए सार्थक प्रकटीकरण के दायित्व को अक्षुण्ण रखती है। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

“8. निरोध के आदेश के आधारों का आदेश से प्रभावित व्यक्तियों को प्रकट किया जाना.—(1) जब किसी व्यक्ति को किसी निरोध आदेश के अनुसरण में निरुद्ध किया जाता है, तब आदेश करने वाला प्राधिकारी, यथाशीघ्र, किंतु सामान्यतः निरोध की तिथि से पांच दिन से अनधिक और असाधारण परिस्थितियों में और ऐसे कारणों से जिन्हें लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा, दस दिन से अनधिक के भीतर, उसे वे आधार संसूचित करेगा जिन पर वह आदेश किया गया है और उसे उपयुक्त सरकार के समक्ष आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का शीघ्रतम अवसर प्रदान करेगा।

(2) उपधारा (1) की कोई भी बात प्राधिकारी से ऐसे तथ्यों को प्रकट करने की अपेक्षा नहीं करेगी जिन्हें प्रकट करना वह लोक हित के विरुद्ध समझता है।”

40. धारा 10 परामर्शदाता बोर्ड की संवीक्षा के अनिवार्य संस्थागत नियंत्रण को स्थापित करती है। इसके अंतर्गत उपयुक्त सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के तहत निरोध के प्रत्येक मामले में (जैसा कि अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित हो, उसे छोड़कर), निरोध की तिथि से विहित समय के भीतर परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष निरोध के आधार, अभ्यावेदन (यदि कोई हो), और जहां आदेश जिला मजिस्ट्रेट जैसे किसी सशक्त अधिकारी द्वारा किया गया हो, वहां धारा 3(4) के तहत उस अधिकारी की रिपोर्ट प्रस्तुत करे। यह सुनिश्चित करता है कि निरोध केवल कार्यपालिका के एकपक्षीय मूल्यांकन के भीतर ही सीमित न रहे और एक स्वतंत्र वैधानिक समीक्षा तंत्र के अधीन हो। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

“10. परामर्शदाता बोर्डों को निर्देश.—इस अधिनियम में जैसा कि अन्यथा स्पष्ट रूप से उपबंधित हो, उसे छोड़कर, प्रत्येक मामले में जहां इस अधिनियम के अधीन कोई निरोध आदेश किया गया है, उपयुक्त सरकार, आदेश के अधीन किसी व्यक्ति के निरोध की तिथि से तीन सप्ताह के भीतर, धारा 9 के अधीन अपने द्वारा गठित परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष वे आधार जिन पर आदेश किया गया है और आदेश से प्रभावित व्यक्ति द्वारा किया गया अभ्यावेदन, यदि कोई हो, और उस दशा में जहां आदेश धारा 3 की उपधारा (3) में उल्लिखित किसी अधिकारी द्वारा किया गया है, उस धारा की उपधारा (4) के अधीन ऐसे अधिकारी की रिपोर्ट भी प्रस्तुत करेगी।”

41. धारा 11 परामर्शदाता बोर्ड की प्रक्रिया और समय-सीमा को शासित करती है। बोर्ड को अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्रियों पर विचार करना चाहिए, वह आगे की जानकारी मांग सकता है, और उसे निरोध की तिथि से विहित अवधि के भीतर उपयुक्त सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी चाहिए। महत्वपूर्ण रूप से, यदि निरुद्ध व्यक्ति सुने जाने की इच्छा रखता है, या यदि बोर्ड इसे आवश्यक समझता है, तो निरुद्ध व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से सुना जाना चाहिए। रिपोर्ट में इस संबंध में बोर्ड की राय विनिर्दिष्ट होनी चाहिए कि क्या निरोध के लिए पर्याप्त कारण हैं; कार्यवाहियां और रिपोर्ट के अधिकांश भाग गोपनीय होते हैं, और निरुद्ध व्यक्ति बोर्ड से संबंधित मामलों में किसी विधि व्यवसायी के माध्यम से उपस्थित होने का हकदार नहीं है। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

“11. परामर्शदाता बोर्डों की प्रक्रिया.—(1) परामर्शदाता बोर्ड, अपने समक्ष रखी गई सामग्रियों पर विचार करने के पश्चात और उपयुक्त सरकार से या उपयुक्त सरकार के माध्यम से इस प्रयोजन के लिए बुलाए गए किसी व्यक्ति से या संबंधित व्यक्ति से ऐसी आगे की जानकारी मांगने के पश्चात जो वह आवश्यक

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



समझे, और यदि किसी विशेष मामले में, वह ऐसा करना आवश्यक समझता है या यदि संबंधित व्यक्ति सुने जाने की इच्छा रखता है, तो उसे व्यक्तिगत रूप से सुनने के पश्चात, संबंधित व्यक्ति के निरोध की तिथि से सात सप्ताह के भीतर उपयुक्त सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(2) परामर्शदाता बोर्ड की रिपोर्ट उसके एक पृथक भाग में परामर्शदाता बोर्ड की इस संबंध में राय विनिर्दिष्ट करेगी कि संबंधित व्यक्ति के निरोध के लिए पर्याप्त कारण है या नहीं।

(3) जब परामर्शदाता बोर्ड का गठन करने वाले सदस्यों के बीच राय में भिन्नता हो, तब ऐसे सदस्यों के बहुमत की राय को बोर्ड की राय समझा जाएगा।

(4) इस धारा की कोई भी बात किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध कोई निरोध आदेश किया गया है, परामर्शदाता बोर्ड को निर्देश से संबंधित किसी भी मामले में किसी विधि व्यवसायी द्वारा उपस्थित होने का अधिकार नहीं देगी; और परामर्शदाता बोर्ड की कार्यवाहियां और उसकी रिपोर्ट, रिपोर्ट के उस भाग को छोड़कर जिसमें परामर्शदाता बोर्ड की राय विनिर्दिष्ट है, गोपनीय होंगी।"

42. धारा 12 परामर्शदाता बोर्ड की राय के परिणाम को निर्धारित करती है। यदि बोर्ड यह रिपोर्ट देता है कि निरोध के लिए पर्याप्त कारण है, तो उपयुक्त सरकार निरोध आदेश की पुष्टि कर सकती है और ऐसी अवधि के लिए निरोध जारी रख सकती है जैसा वह उचित समझे (वैधानिक अधिकतम अवधि के अधीन)। इसके विपरीत, यदि बोर्ड यह रिपोर्ट देता है कि कोई पर्याप्त कारण नहीं है, तो सरकार का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह निरोध आदेश को वापस ले और संबंधित व्यक्ति को तुरंत रिहा करवाए। इस प्रकार धारा 12 परामर्शदाता बोर्ड की "कोई पर्याप्त कारण नहीं" की राय को उसके प्रवर्तनीय प्रभाव में बाध्यकारी बनाती है। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

"12. परामर्शदाता बोर्ड की रिपोर्ट पर कार्यवाई.—(1) किसी भी मामले में जहां परामर्शदाता बोर्ड ने यह रिपोर्ट दी है कि उसकी राय में, किसी व्यक्ति के निरोध के लिए पर्याप्त कारण है, वहां उपयुक्त सरकार निरोध आदेश की पुष्टि कर सकेगी और संबंधित व्यक्ति के निरोध को ऐसी अवधि के लिए जारी रख सकेगी जैसा वह उचित समझे।

(2) किसी भी मामले में जहां परामर्शदाता बोर्ड ने यह रिपोर्ट दी है कि उसकी राय में, किसी व्यक्ति के निरोध के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं है, वहां उपयुक्त सरकार निरोध आदेश को वापस लेगी और संबंधित व्यक्ति को तुरंत रिहा करवाएगी।"

43. धारा 13 यह उपबंध करके एक वैधानिक अधिकतम सीमा आरोपित करती है कि धारा 12 के अंतर्गत पुष्ट किए गए निरोध आदेश के अनुसरण में किसी व्यक्ति को निरुद्ध किए जाने की अधिकतम अवधि निरोध की तिथि से बारह महीने होगी। परंतु यह स्पष्ट करता है कि यह अधिकतम सीमा सरकार की निरोध आदेश को पहले वापस लेने या संशोधित करने की शक्ति को कम नहीं करती है। इसलिए धारा 13 कार्यपालिका के निरोध को समय के अनुसार सीमित करती है और साथ ही पुनर्विचार या बदली हुई परिस्थितियों पर समय से पूर्व रिहाई की क्षमता को सुरक्षित रखती है। उक्त प्रावधान नीचे उद्धृत किया गया है:

"13. निरोध की अधिकतम अवधि.—अधिकतम अवधि जिसके लिए किसी व्यक्ति को किसी ऐसे निरोध आदेश के अनुसरण में निरुद्ध किया जा सकता है जिसकी धारा 12 के अधीन पुष्टि की जा चुकी है, निरोध की तिथि से बारह महीने होगी:

परंतु इस धारा में शामिल कोई भी बात उपयुक्त सरकार की किसी भी पूर्व समय पर निरोध आदेश को वापस लेने या संशोधित करने की शक्ति को प्रभावित नहीं करेगी।"

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



निवारक निरोध की न्यायिक समीक्षा

44. निवारक निरोध, यद्यपि संवैधानिक रूप से मान्यता प्राप्त है, फिर भी एक असाधारण कार्यपालिका शक्ति बनी हुई है जो सीधे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आघात करती है और इसलिए यह सख्त संवैधानिक और वैधानिक नियंत्रण के अधीन है।

45. ए.के. रॉय बनाम भारत संघ¹³ के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम की संवैधानिकता को बरकरार रखा और अभिनिर्धारित किया कि निरोध से संबंधित किसी कानून को जनता की स्वतंत्रताओं में हस्तक्षेप की सामान्य दलील पर तब तक निरस्त नहीं किया जा सकता जब तक कि वह अन्यथा संवैधानिक रूप से सुसंगत हो। इसने साथ ही यह भी दोहराया कि किसी निरोध कानून को स्वतंत्रता में हस्तक्षेप की सामान्य दलील पर अमान्य नहीं ठहराया जा सकता यदि वह अन्यथा संवैधानिक रूप से अनुपालन में हो, और यह कि अनुच्छेद 22(4) और 22(5) में सुरक्षात्मक उपाय अनिवार्य नियंत्रण के रूप में कार्य करते हैं, चाहे वे अधिनियम में स्पष्ट रूप से शामिल किए गए हों या नहीं।

46. पूर्व में, शालिनी सोनी बनाम भारत संघ¹⁴ के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया था कि अनुच्छेद 22(5) के दो अविभाज्य पहलू हैं, अर्थात् आधारों की संसूचना और अभ्यावेदन का अवसर, और यह कि “आधार” स्वतः पर्याप्त और स्वतः स्पष्ट होने चाहिए, जिसमें न केवल आनुमानिक निष्कर्ष शामिल हों बल्कि वे घटक तथ्यात्मक सामग्रियां भी शामिल हों जिन पर भरोसा किया गया है, जिसके अंतर्गत उसमें संदर्भित दस्तावेजों की आपूर्ति भी शामिल है।

47. इस देश में निवारक निरोध के न्यायशास्त्र की सैद्धांतिक यात्रा ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य¹⁵ के साथ शुरू हुई, जो स्वतंत्र भारत का पहला वाद था जहां संविधान के मौलिक अधिकारों के प्रावधान माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष व्यापक विचार के लिए आए थे, जिसे भारत के गणतंत्र बनने के चार महीनों के भीतर उसके छह न्यायाधीशों की पूर्ण क्षमता द्वारा तय किया गया था। उस वाद में, निवारक निरोध अधिनियम, 1950 के तहत आदेशित निरोध को अधिनियम की वैधानिकता और स्वयं निरोध आदेश की वैधता दोनों पर चुनौती दी गई थी। न्यायालय ने, उस आधारभूत क्षण में, अपेक्षाकृत शाब्दिक व्याख्या द्वारा अनुच्छेद 21 को सीमित करने का दृष्टिकोण अपनाया, और मौलिक अधिकारों के अनुच्छेदों को अलग, जलरोधी खंडों में संचालित माना। हालांकि, वह प्रारंभिक औपचारिकता स्थायी नहीं रही। ए.के. गोपालन (उपर्युक्त) से आर.सी. कूपर बनाम भारत संघ¹⁶ द्वारा शुरू किए गए प्रभाव-आधारित मौलिक अधिकारों के दृष्टिकोण तक के सैद्धांतिक विकास ने एक निर्णायक बदलाव को चिह्नित किया, जिसने इस बात पर बल दिया कि निवारक निरोध को न केवल अनुच्छेद 22 के तहत बल्कि अनुच्छेद 14, 19 और 21 के व्यापक अनुशासन के भीतर भी संवीक्षा से गुजरना होगा, जिसमें न्यायालयों द्वारा प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों के सख्त अनुपालन और अभ्यावेदन करने के सार्थक अवसर पर जोर दिया गया। स्वतंत्रता के जिस पाठन की शुरुआत एक संकीर्ण, खंडीय रूप में हुई थी, वह इस प्रकार एक समग्र संवैधानिक ढांचे के रूप में परिपक्व हो गई है जिसके भीतर निवारक निरोध को प्रत्येक चरण में स्वयं को न्यायसंगत सिद्ध करना होगा।

48. इस स्थापित ढांचे के भीतर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निरंतर यह माना है कि यद्यपि निरोध प्राधिकारी का “संतोष” आत्मनिष्ठ होता है और न्यायालय आधारों की पर्याप्तता पर अपील में नहीं बैठता है, फिर भी वह संतोष न्यायिक समीक्षा से अछूता नहीं है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



49. शिबबन लाल सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹⁷ और रामेश्वर शॉ बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बर्दवान¹⁸ जैसे प्रारंभिक मामलों में ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्वीकार किया था कि निरोध वहां दोषपूर्ण हो जाता है जहां आधार अप्रासंगिक/कानून से इतर होते हैं या इतने अस्पष्ट होते हैं कि अभ्यावेदन करने में असमर्थ बना देते हैं, और जहां निरोध प्राधिकारी के मन पर बहुविध आधार प्रभावी होते हैं, वहां न्यायालय यह अनुमान नहीं लगा सकता कि किस आधार का कितना प्रभाव था। शिबबन लाल (उपर्युक्त) में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

“8. विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया पहला तर्क, हालांकि, एक महत्वपूर्ण बिंदु उठाता है जिसके लिए सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। इस न्यायालय द्वारा बार-बार यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निवारक निरोध अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत निरोध आदेश जारी करने की शक्ति पूरी तरह से उस धारा में विनिर्दिष्ट उपयुक्त प्राधिकारी के संतोष पर निर्भर करती है। जिन आधारों पर ऐसा संतोष आधारित होना माना जाता है, उनकी पर्याप्तता को कानून की अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है, बशर्ते कि उनका एक तर्कसंगत संबोधात्मक मूल्य हो और वे विधायी प्रावधान के दायरे या उद्देश्य से इतर न हों, सिवाय दुर्भावना के आधार के [बॉम्बे राज्य बनाम आत्मा राम श्रीधर वैद्य, 1951 एससीसी 43]। कानून की अदालत उन तथ्यों की सत्यता या अन्यथा की जांच करने के लिए भी सक्षम नहीं है जिनका उल्लेख अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत निरुद्ध व्यक्ति को दी गई संसूचना में निरोध के आधार के रूप में किया गया है। हालांकि, इस मामले में जो हुआ है वह कुछ अजीब है। सरकार ने स्वयं दिनांक 13-3-1953 की अपनी संसूचना में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जिन आधारों पर मूल निरोध आदेश पारित किया गया था, उनमें से एक आधार सारहीन या अस्तित्वहीन है और उसे निरोध का आधार नहीं बनाया जा सकता है। प्रश्न यह है कि क्या ऐसी परिस्थितियों में अधिनियम की धारा 3(1)(क) के अंतर्गत दिए गए मूल आदेश को बने रहने की अनुमति दी जा सकती है। हमारी राय में, इसका उत्तर केवल नकारात्मक ही हो सकता है। निरोध प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता को निरुद्ध करने के लिए यहाँ दो आधार दिए थे। हम न तो यह तय कर सकते हैं कि ये आधार अच्छे हैं या बुरे, और न ही हम यह आकलन करने का प्रयास कर सकते हैं कि इन आधारों में से प्रत्येक ने उपयुक्त प्राधिकारी के मन पर किस प्रकार और किस सीमा तक कार्य किया और उस संतोष के निर्माण में योगदान दिया जिसके आधार पर निरोध आदेश दिया गया था। यह कहना कि दूसरा आधार, जो अभी भी बचा हुआ है, आदेश को बनाए रखने के लिए पूरी तरह पर्याप्त है, कार्यपालिका प्राधिकारी के आत्मनिष्ठ निर्णय के स्थान पर एक वस्तुनिष्ठ न्यायिक परीक्षण को प्रतिस्थापित करना होगा जो कानून के अंतर्निहित विधायी नीति के विरुद्ध है। ऐसे मामलों में, हम सोचते हैं कि स्थिति वैसी ही होगी मानो इन दो आधारों में से एक अधिनियम के उद्देश्य के लिए अप्रासंगिक था या पूरी तरह से भ्रामक था और यह पूरे निरोध आदेश को दूषित कर देगा।”

50. खुदीराम दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य¹⁹ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकारपूर्वक समीक्षा के सीमित लेकिन वास्तविक क्षेत्र को रेखांकित किया, अर्थात् सोच-विचार न करना (मस्तिष्क का प्रयोग न करना), अनुचित उद्देश्य, डिक्टेशन (किसी अन्य के निर्देश पर कार्य करना), स्वयं द्वारा निर्मित बाधाएं, गलत परीक्षण/गलत व्याख्या, बाहरी सामग्री पर भरोसा, और तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक सामग्री की कमी; जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि “आत्मनिष्ठ संतोष” एक क्षेत्राधिकार संबंधी शर्त है जिसका कानून में अस्तित्व होना अनिवार्य है।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



51. यह प्रतिपादन कि निवारक निरोध तब अनुज्ञेय नहीं है जब देश का सामान्य कानून स्थिति से निपट सकता है, हरधन साहा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य²⁰ में संविधान पीठ के पैरा 19 और 32 से 34 के प्रति अज्ञानता के कारण है।

52. रामेश्वर शॉ बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बर्दवान²¹ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था:

“7. इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि यदि निरुद्ध व्यक्ति को दिए गए आधारों में से कोई भी आधार धारा 3(1)(क) के खंड (i) से (iii) के अनुप्रयोग पर विचार करते समय अप्रासंगिक पाया जाता है और उस अर्थ में अधिनियम से इतर है, तो निरोध प्राधिकारी का वह संतोष जिस पर निरोध का आदेश आधारित है, चुनौती के योग्य है और निरोध आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। इसी प्रकार, यदि निरुद्ध व्यक्ति को दिए गए कुछ आधार इतने अस्पष्ट हैं कि वे वास्तव में निरुद्ध व्यक्ति को अभ्यावेदन करने के उसके वैधानिक अधिकार से वंचित कर देंगे, तो यह पुनः उसके निरोध के आदेश में एक गंभीर दुर्बलता ला सकता है। यदि, हालांकि, वे आधार जिन पर निरोध का आदेश आगे बढ़ता है, उन मामलों के लिए प्रासंगिक और सुसंगत हैं जिन पर धारा 3(1)(क) के अंतर्गत विचार किया जाना है, तो निरुद्ध व्यक्ति के लिए यह तर्क देकर निरोध के आदेश को चुनौती देना खुला नहीं होगा कि निरोध प्राधिकारी का संतोष उक्त आधारों में से किसी पर भी तर्कसंगत रूप से आधारित नहीं है।

8. हालांकि, इस संबंध में इस बात पर बल देना आवश्यक है कि यद्यपि धारा 3(1)(क) द्वारा परिकल्पित निरोध प्राधिकारी का संतोष उक्त प्राधिकारी का आत्मनिष्ठ संतोष है, फिर भी ऐसे मामले उत्पन्न हो सकते हैं जहां निरुद्ध व्यक्ति दुर्भावना के आधार पर अपने निरोध की वैधानिकता को चुनौती दे सकता है और उक्त दलील के समर्थन में आग्रह कर सकता है कि दुर्भावना दर्शाने वाले अन्य तथ्यों के साथ, न्यायालय उसकी इस शिकायत पर भी विचार कर सकता है कि उसे दिए गए आधार संभवतः या तर्कसंगत रूप से निरोध प्राधिकारी द्वारा उसके विरुद्ध निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन नहीं कर सकते। केवल इसी आनुषंगिक तरीके से और दुर्भावना की दलील के समर्थन में ही यह प्रश्न विचारणीय हो सकता है; अन्यथा धारा 3(1)(क) द्वारा परिकल्पित उक्त संतोष के औचित्य या उपयुक्तता पर न्यायालयों के समक्ष प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।”

53. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने खुदीराम दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य²² के वाद में, एक जिला मजिस्ट्रेट द्वारा आंतरिक सुरक्षा अनुरक्षण अधिनियम, 1971 की धारा 3 के अंतर्गत पारित निरोध के एक आदेश को दी गई चुनौती की जांच करते समय, निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया था:

“8. अब धारा 3 की उपधारा (1) और (2) की भाषा के सीधे पाठन से यह स्पष्ट है कि निरोध की शक्ति का प्रयोग निरोध प्राधिकारी के इस आत्मनिष्ठ संतोष पर निर्भर करता है कि किसी व्यक्ति को उपधारा (1) के खंड (क) के उपखंड (i), (ii) और (iii) में निर्धारित अनुसार पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से, ऐसे व्यक्ति को निरुद्ध करना आवश्यक है। धारा 3 की उपधारा (1) और (2) में प्रयुक्त शब्द “यदि संतुष्ट हो” (यदि समाधान हो जाता है) हैं और वे स्पष्ट रूप से निरोध का आदेश दिए जाने से पहले निरोध प्राधिकारी की ओर से आत्मनिष्ठ संतोष को आयात करते हैं। और ऐसा एक वैध कारण से उपबंधित किया गया है जो तब स्पष्ट हो जाता है जब हम निरोध की शक्ति की प्रकृति और उन शर्तों पर विचार करते हैं जिन पर इसका प्रयोग किया जा सकता है। निरोध की शक्ति स्पष्ट रूप से एक निवारक उपाय है। यह किसी भी रीति से दंड की प्रकृति का हिस्सा नहीं है। यह समुदाय के प्रति नुकसान को रोकने के लिए एहतियात के तौर पर किया जाता है। चूंकि प्रत्येक निवारक उपाय इस सिद्धांत पर आधारित

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



होता है कि किसी व्यक्ति को कुछ ऐसा करने से रोका जाना चाहिए, जिसे यदि स्वतंत्र और अबाधित छोड़ दिया जाए, तो यह उचित रूप से संभावित है कि वह उसे करेगा, इसलिए यह अनिवार्य रूप से सभी मामलों में, कुछ सीमा तक, सबूत से अलग संदेह या प्रत्याशा पर आगे बढ़ता है। पतंजलि शास्त्री, मुख्य न्यायमूर्ति ने मद्रास राज्य बनाम वी.जी. राव [मद्रास राज्य बनाम वी.जी. राव, (1952) 1 एससीसी 410] में यह इंगित किया था कि निवारक निरोध “काफी हद तक एहतियाती और संदेह पर आधारित” होता है और इन टिप्पणियों में उक्त मामले में विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा आर. बनाम हैलिडे [आर. बनाम हैलिडे, 1917 एससी 260 (एचएल)] में लॉर्ड फिनले की टिप्पणियों के संदर्भ में कहे गए निम्नलिखित शब्दों को जोड़ा जा सकता है, अर्थात्, कि ‘न्यायालय संदेह की उन परिस्थितियों की जांच करने के लिए सबसे कम उपयुक्त न्यायाधिकरण था जिन पर ऐसी प्रत्याशित कार्रवाई काफी हद तक आधारित होनी चाहिए’। कार्यवाही की यह प्रकृति होने के कारण, यह कल्पना करना असंभव है कि इसे वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के योग्य कैसे माना जा सकता है। जिन मामलों पर निरोध प्राधिकारी को विचार करना होता है, वे यह हैं कि क्या संबंधित व्यक्ति, आसपास की परिस्थितियों और अन्य प्रासंगिक सामग्री के आलोक में आंके गए अपने पिछले आचरण को ध्यान में रखते हुए, धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (क) के उपखंड (i), (ii) और (iii) में से किसी में परिकल्पित पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से कार्य करने की संभावना रखता है, और यदि ऐसा है, तो क्या उसे इस प्रकार कार्य करने से रोकने की दृष्टि से निरुद्ध करना आवश्यक है। ये मामले वस्तुनिष्ठ निर्धारण के योग्य नहीं हैं और उन्हें वस्तुनिष्ठ मानकों द्वारा आंके जाने का उद्देश्य नहीं हो सकता है। ये अनिवार्य रूप से वे मामले हैं जिन्हें प्रशासनिक कार्रवाई करने के उद्देश्य से प्रशासनिक रूप से निर्धारित किया जाना है। इसलिए, विधायिका द्वारा जानबूझकर और सोच-समझकर उनका निर्धारण निरोध प्राधिकारी के आत्मनिष्ठ संतोष पर छोड़ दिया गया है जो अपनी विशेष स्थिति, अनुभव और विशेषज्ञता के कारण उनका निर्णय करने के लिए सबसे उपयुक्त होगा। इन परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि इन मामलों के संबंध में निरोध प्राधिकारी का आत्मनिष्ठ संतोष निरोध की शक्ति के प्रयोग के लिए आधार स्थापित करता है और न्यायालय को उन आधारों के औचित्य या पर्याप्तता पर विचार करने के लिए आमंत्रित नहीं किया जा सकता है जिन पर निरोध प्राधिकारी का संतोष आधारित है। न्यायालय, आधारों की समीक्षा पर, प्राधिकारी के निर्णय के स्थान पर अपनी राय को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है, क्योंकि निरोध की शक्ति के प्रयोग के लिए जो पूर्ववर्ती शर्त बनाई गई है, वह एक निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए निरोध की आवश्यकता का वस्तुनिष्ठ निर्धारण नहीं है, बल्कि निरोध प्राधिकारी की आत्मनिष्ठ राय है, और यदि निरोध प्राधिकारी द्वारा एक निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए निरोध की आवश्यकता के संबंध में एक आत्मनिष्ठ राय बनाई जाती है, तो निरोध की शक्ति के प्रयोग की शर्त पूरी हो जाएगी। यह स्पष्ट रूप से दर्शाएगा कि निरोध की शक्ति एक अर्ध-न्यायिक शक्ति नहीं है। ...

9. परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि निरुद्ध करने वाले प्राधिकारी विषयपरक समाधान न्यायिक पुनर्विलोकन से पूर्णतः मुक्त है। न्यायालयों ने न्यायिक विनिश्चयों द्वारा एक ऐसा क्षेत्र तैयार किया जाता है, भले ही वह सीमित हो, जिसके भीतर विषयपरक समाधान की विधिमान्यता को अभी भी न्यायिक संवीक्षा के अधीन किया जा सकता है। वह मूल सिद्धांत जिस पर न्यायालय आगे बढ़े हैं यह है कि विषय परक समाधान कार्यपालिका को प्रदत्त शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्व शर्त होने के नाते, न्यायालय हमेशा इस बात की जांच कर सकता है कि क्या प्राधिकारी द्वारा अपेक्षित समाधान प्राप्त कर लिया गया है यदि ऐसा नहीं है तो शक्ति के प्रयोग की पूर्व शर्त पूरी नहीं होगी और शक्ति का प्रयोग दूषित होगा। न्यायिक विनिश्चयों द्वारा यह कहने के लिए कई आधार विकसित किए गए हैं कि प्राधिकारी

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



द्वारा कानून के तहत अपेक्षानुसार कोई विषयपरक समाधान प्राप्त नहीं किया गया है। सबसे सरल मामला वह है जहां प्राधिकारी ने अपने मस्तिष्क का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया है, ऐसे मामले में प्राधिकारी संभवतः उस तथ्य के संबंध में संतुष्ट नहीं हो सकता जिसके संबंध में उसका संतुष्ट होना आवश्यक है। किंग एम्परर बनाम शिबनाथ बनर्जी [किंग एम्परर बनाम शिबनाथ बनर्जी, 1943 एससीसी ऑनलाइन एफसी 15 : एआईआर 1943 एफसी 75 : (1944) 6 एफसीआर 1] इसमें एक प्रासंगिक मामला है। फिर ऐसा मामला हो सकता है जहां शक्ति का प्रयोग बेईमानी से या किसी अनुचित उद्देश्य के लिए किया गया हो: ऐसा मामला भी प्राधिकारी की ओर से संतोष के अस्तित्व को नकार देगा। “अनुचित उद्देश्य” का होना, अर्थात्, एक ऐसा उद्देश्य जो कानून द्वारा परिकल्पित नहीं है, कई तय मामलों में नियंत्रण के एक स्वतंत्र आधार के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसके अलावा, संतोष स्वयं प्राधिकारी का संतोष होना चाहिए, और इसलिए, यदि शक्ति का प्रयोग करने में, प्राधिकारी ने किसी अन्य निकाय के निर्देश पर (डिक्टेसन के तहत) कार्य किया है, जैसा कि पुलिस आयुक्त ने बॉम्बे राज्य बनाम गोवर्धनदास भानजी [बॉम्बे राज्य बनाम गोवर्धनदास भानजी, 1951 एससीसी 1088] में किया था और श्रम और राष्ट्रीय सेवा मंत्रालय के अधिकारी ने सिम्स मोटर यूनिट्स लिमिटेड बनाम मिनिस्टर ऑफ लेबर एंड नेशनल सर्विस [सिम्स मोटर यूनिट्स लिमिटेड बनाम मिनिस्टर ऑफ लेबर एंड नेशनल सर्विस, (1946) 2 ऑल ईआर 201] में किया था, तो शक्ति का प्रयोग दोषपूर्ण होगा और इसी प्रकार शक्ति का प्रयोग वहां भी दूषित होगा जहां प्राधिकारी ने स्वयं द्वारा निर्मित नीति के नियमों द्वारा या किसी अन्य तरीके से प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने से खुद को अक्षम कर लिया है। प्राधिकारी द्वारा प्राप्त किया गया माना जाने वाला संतोष वहां भी दोषपूर्ण होगा जहां वह एक गलत परीक्षण के अनुप्रयोग या किसी कानून की गलत व्याख्या पर आधारित हो। जहां ऐसा होता है, वहां प्राधिकारी का संतोष उस वस्तु के संबंध में नहीं होगा जिसके संबंध में उसका संतुष्ट होना आवश्यक है। फिर से, संतोष उन सामग्रियों पर आधारित होना चाहिए जो तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक मूल्य की हों। (मछिंदर शिवाजी महार बनाम आर. [मछिंदर शिवाजी महार बनाम आर., 1950 एससीसी ऑनलाइन एफसी 4 : एआईआर 1950 एफसी 129 : (1949-50) 11 एफसीआर 827]) जिन आधारों पर संतोष आधारित है, वे ऐसे होने चाहिए जिन्हें एक तर्कसंगत मानव उस तथ्य से संबंधित मान सके जिसके संबंध में संतोष तक पहुंचना है। वे जांच की विषय-वस्तु के लिए प्रासंगिक होने चाहिए और कानून के दायरे और उद्देश्य से इतर नहीं होने चाहिए। यदि प्राधिकारी ने ध्यान में रखा है, भले ही वह सर्वोत्तम इरादे से ही क्यों न हो, एक प्रासंगिक कारक के रूप में कुछ ऐसा जिसे वह यह तय करने में उचित रूप से ध्यान में नहीं रख सकता था कि शक्ति का प्रयोग किया जाए या नहीं या किस तरीके या सीमा तक इसका प्रयोग किया जाना चाहिए, तो शक्ति का प्रयोग दोषपूर्ण होगा। (एस. प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य [एस. प्रताप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1963 एससीसी ऑनलाइन एससी 10 : एआईआर 1964 SC 72 : (1964) 4 SCR 733]) यदि कानून में स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से ऐसे मामले पाए जाते हैं जिन पर प्राधिकारी को ध्यान देना चाहिए, तो शक्ति का प्रयोग करने में प्राधिकारी को उन मामलों पर ध्यान देना चाहिए। प्राधिकारी को उन मामलों पर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिए जिन पर विचार करने के लिए वह बाध्य है।”

54. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इच्छु देवी चोरारिया बनाम भारत संघ²³ में स्वतंत्रता के मामलों में कड़ाई पर बल देते हुए, निरोध को “कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया” के रूप में न्यायसंगत ठहराने का भार पूरी तरह से निरोध प्राधिकारी पर डाला है।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



55. सुनील फुलचंद शाह बनाम भारत संघ²⁴ के वाद में यह दोहराया गया था कि उपलब्ध सीमित सुरक्षात्मक उपायों को देखते हुए, वैधानिक समय-सीमाओं और प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का कड़ाई से अनुपालन किया जाना चाहिए, और कोई भी चूक निरोध या निरंतर निरोध को अवैध बना सकती है। इस प्रकार, आधुनिक निवारक निरोध न्यायशास्त्र यह स्वीकार करता है कि कोई भी निरोध आदेश केवल इसलिए सुरक्षित नहीं है क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप से वैध है; संवैधानिक न्यायालय वहां निरोध को रोक देंगे जहां वैधानिक उद्देश्य, सामग्री का आधार, आधारों की स्पष्टता, जीवंत संपर्क (लाइव लिंक), और प्रक्रियात्मक समय-सीमाएं न्यायिक संवीक्षा पर खरी नहीं उतरती हैं। इसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

“11. ... जिस व्यक्ति के विरुद्ध निरोध का आदेश पारित किया गया है, उसे उपलब्ध सुरक्षात्मक उपाय सीमित हैं और इसलिए, न्यायालयों ने हमेशा यह माना है कि कानून द्वारा उपबंधित सभी प्रक्रियात्मक सुरक्षात्मक उपायों का कड़ाई से अनुपालन किया जाना चाहिए। समय-सीमा को बनाए रखने में किसी भी चूक को, यथास्थिति, निरोध आदेश या निरंतर निरोध को अवैध बनाने का प्रभाव रखने वाला माना गया है। निवारक निरोध का औचित्य आवश्यकता होने के कारण किसी व्यक्ति को केवल तब तक निरुद्ध किया जा सकता है जब तक उसे निरुद्ध करना आवश्यक पाया जाए। यदि उसका निरोध कानून के तहत अनुज्ञेय अधिकतम अवधि के दौरान भी अनावश्यक पाया जाता है, तो उसे तुरंत निरोध से रिहा किया जाना चाहिए। वास्तव में इसी संदर्भ में धारा 10 और विशेष रूप से “निरुद्ध किया जा सकेगा” शब्दों की व्याख्या करनी होगी।”

56. ऊपर संज्ञान में लिए गए निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में यह उभर कर सामने आता है कि संवैधानिक न्यायनिर्णयन के शुरुआती वर्षों में, अक्सर निरोध प्राधिकारियों की ओर से यह दलील दी जाती थी कि एक बार निरोध का आदेश, जो प्रत्यक्ष रूप से अपने चेहरे पर वैध हो, प्रस्तुत कर दिया जाने पर न्यायालय की जांच व्यावहारिक रूप से समाप्त हो जानी चाहिए। कानून, हालांकि, निर्णायक रूप से विकसित हुआ है। संवैधानिक न्यायालय निवारक निरोध को केवल इसलिए सुरक्षित नहीं मानते हैं क्योंकि आदेश औपचारिक रूप से वैधानिक भाषा में तैयार किया गया है। अनुच्छेद 21 के न्यायशास्त्र के गहन होने और अनुच्छेद 14, 19 और 22 के सुदृढीकरण के साथ, अब यह सुस्थापित है कि एक निवारक निरोध आदेश, प्रथम दृष्टया नियमितता के बावजूद, सुविख्यात आधारों पर न्यायिक संवीक्षा के लिए खुला रहता है, जिसमें सोच-विचार न करना (मस्तिष्क का प्रयोग न करना), अप्रासंगिक या बाहरी सामग्री पर भरोसा करना, अभ्यावेदन करने में असमर्थ बनाने वाली अस्पष्टता, एक जीवंत और सन्निकट संपर्क का अभाव, शक्ति का कपटपूर्ण प्रयोग, और अनिवार्य प्रक्रियात्मक सुरक्षात्मक उपायों का उल्लंघन शामिल है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मामलों में, कोई भी कार्यकारी आदेश संवैधानिक समीक्षा के विरुद्ध एक अभेद्य ढाल का दावा नहीं कर सकता है।

निरोध आदेश की वैधानिकता के लिए परीक्षण

57. चाहे जो भी हो, इस क्षेत्र के सभी प्रासंगिक निर्णयों से निकलने वाले कानून के सिद्धांतों को संकलित करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निरोध प्राधिकारी का “आत्मनिष्ठ संतोष” एक क्षेत्राधिकार संबंधी आधार है जिसका कानून में अस्तित्व होना अनिवार्य है और इसे निरोध के अभिलेख से प्रदर्शित किया जाना चाहिए, जिसमें तामील किए गए आदेश और आधार शामिल हैं। निरोध का प्राधिकार स्वयं निरोध के आदेश से प्रवाहित होता है, जिसे निरुद्ध व्यक्ति या न्यायालय पढ़ सकता है और उससे उस तरीके को समझ सकता है जिससे निरुद्ध व्यक्ति की गतिविधि को निरोध प्राधिकारी द्वारा लोक

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



व्यवस्था के अनुरक्षण के प्रतिकूल माना गया था और वास्तव में उसका क्या आशय था कि जिसे घटित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

58. इसलिए, विस्तृत अभिवचनों के अभाव में भी, जहां स्वयं आदेश या प्रकट की गई सामग्रियां एक गंभीर संदेह पैदा करती हैं कि निरोध प्राधिकारी ने अपनी शक्तियों के दायरे को गलत समझा, एक गलत परीक्षण लागू किया, बाहरी विचारों पर कार्य किया, या वैधानिक अनिवार्यताओं को संबोधित करने में विफल रहा, वहां न्यायालय को अपनी आँखें बंद नहीं करनी चाहिए। साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन में शामिल हुए बिना या सामग्री की पर्याप्तता पर अपनी राय प्रतिस्थापित किए बिना, न्यायालय यह जांच करने का हकदार है कि क्या आदेश प्रकट करता है: (i) कथित गतिविधि और वैधानिक उद्देश्य के बीच एक कानूनी संबंध (जैसे, “कानून और व्यवस्था” से भिन्न “लोक व्यवस्था”), (ii) स्पष्ट, सटीक और स्वतः स्पष्ट आधार जो अनुच्छेद 22(5) के तहत एक प्रभावी अभ्यावेदन को सक्षम बनाते हैं, और (iii) प्रक्रियात्मक समय-सीमाओं और सुरक्षात्मक उपायों का कड़ाई से पालन। कोई भी निरोध आदेश जो अपनी शर्तों पर, प्रदत्त शक्ति से परे जाता है या इन क्षेत्राधिकार संबंधी मापदंडों पर दूषित है, उसे कायम नहीं रखा जा सकता है और वह बंदी प्रत्यक्षीकरण क्षेत्राधिकार में रोके जाने योग्य है।

59. अमीना बेगम बनाम तेलंगाना राज्य²⁵ के वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निवारक निरोध के आदेशों के लिए परीक्षण को निम्नलिखित शर्तों के रूप में संकलित किया और प्रतिपादित किया:

“28. किसी दिए गए मामले की परिस्थितियों में, एक संवैधानिक न्यायालय को जब निवारक निरोध के आदेशों की वैधानिकता का परीक्षण करने के लिए कहा जाता है, तो वह यह जांच करने का हकदार होगा कि क्या:

28.1. आदेश निरोध प्राधिकारी के अपेक्षित संतोष पर आधारित है, भले ही वह आत्मनिष्ठ हो, क्योंकि कानून या तथ्य के किसी मामले के अस्तित्व के संबंध में ऐसे संतोष का अभाव, जिस पर शक्ति के प्रयोग की वैधानिकता आधारित है, शक्ति के प्रयोग के संतुष्ट न होने के लिए अपरिहार्य शर्त होगी;

28.2. ऐसा अपेक्षित संतोष प्राप्त करने में, निरोध प्राधिकारी ने सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया है और वह कानून के दायरे और उद्देश्य से इतर सामग्री पर आधारित नहीं है;

28.3. शक्ति का प्रयोग उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया है जिसके लिए वह प्रदान की गई है, या किसी अनुचित उद्देश्य के लिए प्रयोग किया गया है जो कानून द्वारा अधिकृत नहीं है, और इसलिए वह अधिकारबाधित है;

28.4. निरोध प्राधिकारी ने स्वतंत्र रूप से कार्य किया है या किसी अन्य निकाय के निर्देश पर कार्य किया है;

28.5. निरोध प्राधिकारी ने, स्वयं द्वारा निर्मित नीति के नियमों के कारण या शासी कानून द्वारा अनधिकृत किसी अन्य तरीके से, प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने से खुद को अक्षम कर लिया है;

28.6. निरोध प्राधिकारी का संतोष उन सामग्रियों पर निर्भर है जो तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक मूल्य की हैं, और निरोध प्राधिकारी ने वैधानिक जनादेश के अनुसार मामलों पर उचित ध्यान दिया है;

28.7. संतोष किसी व्यक्ति के पिछले आचरण और उसे निरुद्ध करने की अपरिहार्य आवश्यकता के बीच एक जीवंत और सन्निकट संपर्क के अस्तित्व को ध्यान में रखकर प्राप्त किया गया है या वह ऐसी सामग्री पर आधारित है जो पुरानी हो चुकी है;

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



28.8. अपेक्षित संतोष तक पहुंचने का/के आधार ऐसा/ऐसे हैं जिसे कुछ सीमा तक तर्कसंगतता और विवेक रखने वाला कोई व्यक्ति उस तथ्य से जुड़ा हुआ और जांच की विषय-वस्तु के लिए प्रासंगिक मानेगा जिसके संबंध में संतोष तक पहुंचना है;

28.9. वे आधार जिन पर निवारक निरोध का आदेश आधारित है, अस्पष्ट नहीं हैं बल्कि सटीक, प्रासंगिक और सुसंगत हैं जो पर्याप्त स्पष्टता के साथ निरुद्ध व्यक्ति को निरोध के संतोष की सूचना देते हैं, जिससे उसे एक उपयुक्त अभ्यावेदन करने का अवसर मिलता है; और

28.10. कानून के तहत उपबंधित समय-सीमाओं का कड़ाई से पालन किया गया है।

29. यदि न्यायालय शक्ति के प्रयोग को दोषपूर्ण पाता है और/या ऊपर उल्लिखित परीक्षाओं में से किसी को लागू करने पर उसे दूषित पाता है, जिससे निरोध आदेश कमजोर हो जाता है, तो ऐसा निरोध जो निस्संदेह निरुद्ध व्यक्ति के लिए कड़े परिणाम लेकर आता है, उस गलत को ठीक करने के लिए रोके जाने की मांग करेगा।”

60. तदनुसार, कानून की स्थापित स्थिति यह है कि जबकि न्यायालय साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं करता है या निरोध प्राधिकारी के आत्मनिष्ठ संतोष के स्थान पर अपना आकलन प्रतिस्थापित नहीं करता है, वह यह जांच करने के लिए कर्तव्यबद्ध है कि क्या निरोध प्रासंगिक, सन्निकट और तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक सामग्री में निहित है, क्या प्राधिकारी ने कानून की सीमाओं के भीतर स्वतंत्र रूप से अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया है, क्या आधार सटीक और स्वतः स्पष्ट हैं ताकि अनुच्छेद 22(5) के तहत एक प्रभावी अभ्यावेदन को सक्षम किया जा सके, और क्या अनिवार्य समय-सीमाओं और प्रक्रियात्मक सुरक्षात्मक उपायों का कड़ाई से अनुपालन किया गया है। कोई भी निरोध जो इन कसौटियों पर विफल रहता है, जिन्हें अब अमीना बेगम (उपर्युक्त) में अधिकारपूर्वक संकलित किया गया है, वह अपनी प्रकृति में निवारक नहीं रह जाता है और स्वतंत्रता में एक अस्वीकार्य कटौती बन जाता है, जो बंदी प्रत्यक्षीकरण क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप का औचित्य सिद्ध करता है।

विचारणीय प्रश्न

61. वर्तमान विवाद का सार और संक्षेप यह है कि क्या आक्षेपित निवारक निरोध आदेशों के तहत निरुद्ध व्यक्तियों की निरंतर अभिरक्षा को कानून में कायम रखा जा सकता है, निवारक निरोध पर संवैधानिक सीमाओं और “कानून और व्यवस्था” तथा “लोक व्यवस्था” के बीच स्थापित अंतर को ध्यान में रखते हुए। यह चुनौती अनिवार्य रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया की वैधानिकता और निरोध के आधार की वैधानिकता पर निर्भर करती है। इसलिए, यह मामला निम्नलिखित प्रश्नों के निर्धारण की मांग करता है:

I. क्या निवारक निरोध को शासित करने वाले संवैधानिक और वैधानिक सुरक्षात्मक उपायों, जिनमें भरोसा की गई सामग्री की आपूर्ति, अभ्यावेदनों पर विचार, परामर्शदाता बोर्ड को निर्देश और उसकी राय, तथा विहित समय-सीमाओं का पालन शामिल है, का उचित अनुपालन किया गया था।

II. क्या निरोध प्राधिकारी का संतोष कानून के अनुसार, प्रासंगिक और सन्निकट सामग्री पर प्राप्त किया गया था, और क्या आधार सटीक और पर्याप्त हैं ताकि अनुच्छेद 22(5) के तहत एक प्रभावी अभ्यावेदन को सक्षम किया जा सके।

III. क्या आक्षेपित निरोध आदेश ऐसी सामग्री पर आधारित हैं जो वैध रूप से “लोक व्यवस्था” से संबंधित है, जैसा कि केवल एक “कानून और व्यवस्था” की स्थिति से भिन्न है।

विश्लेषण

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



1. क्या निवारक निरोध को शासित करने वाले संवैधानिक और वैधानिक सुरक्षात्मक उपायों, जिनमें अभ्यावेदनों पर समय पर विचार और विहित समय-सीमाओं का पालन शामिल है, का उचित अनुपालन किया गया था।

62. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 प्रक्रियात्मक सुरक्षात्मक उपायों की एक सटीक और क्रमबद्ध श्रृंखला विहित करता है, जिसमें से प्रत्येक बिना विचारण के किसी व्यक्ति को स्वतंत्रता से वंचित करने की कार्यपालिका की शक्ति पर एक अनिवार्य नियंत्रण के रूप में कार्य करता है। ये सुरक्षात्मक उपाय केवल निर्देशिका औपचारिकताएं नहीं हैं, वे निवारक निरोध की असाधारण शक्ति के लिए चुकाई जाने वाली संवैधानिक कीमत हैं, और उनका कोई भी उल्लंघन निरोध या उसके बने रहने को अवैध बना देता है। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सुनील फुलचंद शाह (उपर्युक्त) में याद दिलाया कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध निरोध आदेश पारित किया गया है, उसे उपलब्ध सुरक्षात्मक उपाय सीमित हैं, और इसलिए कानून द्वारा उपबंधित सभी प्रक्रियात्मक सुरक्षात्मक उपायों का कड़ाई से अनुपालन किया जाना चाहिए, समय-सीमा को बनाए रखने में किसी भी चूक का प्रभाव निरोध या निरंतर निरोध को अवैध बनाने का होता है।

63. इसलिए, यह न्यायालय पहले यह जांच करता है कि क्या वर्तमान मामलों में इन सुरक्षात्मक उपायों में से प्रत्येक का उचित अनुपालन किया गया था, और क्या निरोध प्राधिकारी द्वारा अमीना बेगम (उपर्युक्त) में प्रतिपादित परीक्षणों के संदर्भ में स्वतंत्र रूप से अपेक्षित संतोष प्राप्त किया गया था।

धारा 3(4) के तहत राज्य सरकार द्वारा अनुमोदन

64. चूंकि निरोध आदेश जिला मजिस्ट्रेट, जालौन द्वारा दिए गए थे, जो अधिनियम की धारा 3(3) के तहत सशक्त एक अधिकारी हैं, इसलिए धारा 3(4) यह आदेश देती है कि निरोध के तथ्य की रिपोर्ट, उन आधारों और अन्य प्रासंगिक विवरणों के साथ, राज्य सरकार को तत्काल की जाए, और यह आदेश तब तक बारह दिनों से अधिक समय तक प्रवृत्त नहीं रहेगा जब तक कि उस अवधि के भीतर राज्य सरकार द्वारा इसे अनुमोदित न कर दिया जाए। वर्तमान मामले में, दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 के निरोध आदेशों को राज्य सरकार द्वारा दिनांक 03.05.2025 को अनुमोदित किया गया था, जो निरोध की संबंधित तिथियों से बारह दिनों की विहित अवधि के भीतर आता है। तदनुसार, धारा 3(4) की आवश्यकता का अनुपालन पाया जाता है।

धारा 3(5) के तहत केंद्र सरकार को रिपोर्ट करना

65. धारा 3(5) की यह अपेक्षा है कि जब राज्य सरकार द्वारा कोई आदेश किया जाता है या अनुमोदित किया जाता है, तब राज्य सरकार सात दिन के भीतर उस तथ्य की रिपोर्ट, उन आधारों के सहित जिन पर आदेश किया गया है और अन्य प्रासंगिक विवरणों के सहित केंद्रीय सरकार को करेगी। वर्तमान मामले में, निरोध आदेशों को संबंधित सामग्री के साथ पत्र दिनांक 05.05.2025 के माध्यम से केंद्र सरकार को प्रेषित किया गया था, अर्थात् दिनांक 03.05.2025 के अनुमोदन के सात दिनों के भीतर। तदनुसार, धारा 3(5) की आवश्यकता का अनुपालन पाया जाता है।

धारा 8 और अनुच्छेद 22(5) के अंतर्गत आधारों की संसूचना

66. संविधान के अनुच्छेद 22(5) के साथ पठित अधिनियम की धारा 8 की यह अपेक्षा है कि निरोध प्राधिकारी निरुद्ध व्यक्ति को यथाशीघ्र और सामान्यतः पांच दिनों के भीतर वे आधार संसूचित करेगा जिन पर निरोध आदेश किया गया है, और अभ्यावेदन करने का शीघ्रतम अवसर प्रदान करेगा। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शालिनी सोनी (उपर्युक्त) में स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 22(5) के दो

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अविभाज्य पहलू हैं, आधारों की संसूचना और अभ्यावेदन का अवसर, तथा आधार स्वतः पर्याप्त और स्वतः स्पष्ट होने चाहिए, जिसमें न केवल आनुमानिक निष्कर्ष शामिल हों बल्कि वे घटक तथ्यात्मक सामग्रियां भी शामिल हों जिन पर भरोसा किया गया है, जिसके अंतर्गत उसमें संदर्भित दस्तावेजों की आपूर्ति भी शामिल है।

67. वर्तमान वाद में, निरोध के आधारों की जांच से यह प्रकट होता है कि निरोध प्राधिकारी ने पांच विशिष्ट दस्तावेजों पर भरोसा किया, जो उसमें संलग्न थे, अर्थात् प्रभारी निरीक्षक, थाना कोतवाली कालपी का प्रेषण पत्र दिनांक 25.04.2025, निरोध प्रस्ताव दिनांक 25.04.2025, क्षेत्राधिकारी कालपी का प्रेषण पत्र दिनांक 26.04.2025, अपर पुलिस अधीक्षक जालौन का प्रेषण पत्र दिनांक 26.04.2025, स्थानीय आसूचना इकाई, उरई की रिपोर्ट दिनांक 03.04.2025, और पुलिस अधीक्षक जालौन का पत्र दिनांक 27.04.2025। इन दस्तावेजों को आधारों में स्पष्ट रूप से चिह्नित किया गया था और निरुद्ध व्यक्तियों के अवलोकन के लिए उनकी प्रमाणित प्रतियां संलग्न की गई थीं। इस प्रकार निरुद्ध व्यक्तियों के समक्ष अपना अभ्यावेदन करते समय न केवल आधार बल्कि भरोसा की गई संपूर्ण सामग्री उपलब्ध थी।

68. इस प्रकार, अभिलेख से यह प्रकट होता है कि निरोध के आधार और भरोसा किए गए सभी दस्तावेज निरुद्ध व्यक्तियों पर विधिवत तामील किए गए थे, और निरुद्ध व्यक्ति आक्षेपित निरोध आदेशों के विरुद्ध दिनांक 07.05.2025/08.05.2025 को अभ्यावेदन प्रस्तुत करने में सक्षम थे और उन्होंने ऐसा किया भी। भरोसा किए गए दस्तावेजों की आपूर्ति न करने या अभ्यावेदन करने में असमर्थ बनाने वाले आधारों की अपर्याप्तता की कोई विशिष्ट शिकायत याचिकाकर्ताओं द्वारा इस न्यायालय के समक्ष सिद्ध नहीं की गई है। तदनुसार, धारा 8 और अनुच्छेद 22(5) की आवश्यकताओं का अनुपालन पाया जाता है।

अभ्यावेदनों पर विचार

69. निरुद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत दिनांक 07.05.2025/08.05.2025 के अभ्यावेदनों पर राज्य सरकार द्वारा विधिवत विचार किया गया था। सैय्याज अली और हसनैन के अभ्यावेदन दिनांक 20.05.2025 को अस्वीकार कर दिए गए थे, और सिकंदर का अभ्यावेदन दिनांक 21.05.2025 को अस्वीकार कर दिया गया था, जिसके बाद अगले दिन संबंधित निरुद्ध व्यक्तियों को संसूचित किया गया था। अभ्यावेदनों की प्रतियां भी परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष रखी गई थीं। इन अभ्यावेदनों पर विचार करने या उनके परिणाम की संसूचना में कोई दुर्बलता इस न्यायालय के समक्ष प्रदर्शित नहीं की गई है।

धारा 10 के अंतर्गत परामर्शदाता बोर्ड को निर्देश

70. धारा 10 यह आदेश देती है कि अधिनियम के अधीन निरोध के प्रत्येक मामले में उपयुक्त सरकार, व्यक्ति के निरोध की तिथि से तीन सप्ताह के भीतर, परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष निरोध के आधार, यदि कोई हो तो अभ्यावेदन, और जहां आदेश जिला मजिस्ट्रेट द्वारा किया गया हो, वहां धारा 3(4) के अंतर्गत उस अधिकारी की रिपोर्ट भी प्रस्तुत करेगी। वर्तमान वाद में, जैसा कि अननुवादित अभिलेख से संकेत मिलता है कि मामले और सभी प्रासंगिक सामग्री को दिनांक 05.05.2025 को उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष रखा गया था, जो निरोध की संबंधित तिथियों से तीन सप्ताह के भीतर है। तदनुसार, धारा 10 की आवश्यकता का अनुपालन पाया जाता है।

धारा 11 के अंतर्गत परामर्शदाता बोर्ड की प्रक्रिया

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



71. धारा 11(1) की यह अपेक्षा है कि परामर्शदाता बोर्ड संबंधित व्यक्ति के निरोध की तिथि से सात सप्ताह के भीतर उपयुक्त सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। निरुद्ध व्यक्तियों को सुनवाई की तिथि के संबंध में सूचित किया गया था और उन्हें परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष एक परम मित्र के साथ उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी जैसा कि धारा 11(4) के अंतर्गत विचारित है। निरुद्ध व्यक्ति दिनांक 28.05.2025 को उत्तर प्रदेश परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष विधिवत उपस्थित हुए और उन्हें सरकारी अधिकारियों के साथ व्यक्तिगत रूप से सुना गया। परामर्शदाता बोर्ड ने तत्पश्चात अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो राज्य सरकार को दिनांक 05.06.2025 को प्राप्त हुई। निरोध की प्रारंभिक तिथि 25.04.2025 से गणना करने पर, रिपोर्ट धारा 11(1) द्वारा आदेशित सात सप्ताह की अवधि के भीतर प्राप्त हुई थी। तदनुसार, धारा 11 की आवश्यकताओं का अनुपालन पाया जाता है।

धारा 12 और 13 के अंतर्गत पुष्टि

72. परामर्शदाता बोर्ड ने यह राय दी कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के निवारक निरोध के लिए पर्याप्त कारण मौजूद थे। उक्त राय पर कार्रवाई करते हुए, राज्य सरकार ने संपूर्ण सामग्री पर स्वतंत्र रूप से पुनर्विचार करने के बाद, अधिनियम की धारा 12 और 13 के अंतर्गत आदेश दिनांक 12.06.2025 द्वारा निरोध आदेशों की पुष्टि की, जिसमें निरोध की संबंधित तिथियों से बारह महीने की अवधि के लिए निरोध जारी रखने का निर्देश दिया गया, जो धारा 13 के तहत विहित अधिकतम अवधि के भीतर आता है। इस प्रकार यह पुष्टि राज्य सरकार द्वारा स्वतंत्र रूप से मस्तिष्क के प्रयोग को दर्शाती है और यह परामर्शदाता बोर्ड की राय पर केवल एक रबर-स्टैंप लगाना मात्र नहीं है, जो अमीना बेगम (उपर्युक्त) की इस आवश्यकता को संतुष्ट करती है कि निरोध प्राधिकारी का संतोष स्वतंत्र रूप से प्राप्त किया जाना चाहिए न कि किसी अन्य निकाय के निर्देश पर (पैरा 28.4)।

73. इस प्रकार, प्रक्रियात्मक अभिलेख की सावधानीपूर्वक जांच करने पर, और अमीना बेगम (उपर्युक्त) में निर्धारित मापदंडों के विरुद्ध उसका परीक्षण करने पर, यह न्यायालय पाता है कि वैधानिक सुरक्षात्मक उपायों की संपूर्ण श्रृंखला, अर्थात् निरोध आदेश पारित किए जाने और राज्य सरकार द्वारा उसके अनुमोदन से लेकर, आधारों की संसूचना, अभ्यावेदनों पर विचार, परामर्शदाता बोर्ड को निर्देश और उसके समक्ष सुनवाई, बोर्ड की राय की प्राप्ति, और राज्य सरकार द्वारा अंतिम पुष्टि तक, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(4), 3(5), 8, 10, 11, 12 और 13 के अंतर्गत विहित समय-सीमाओं और आवश्यकताओं के तथा अनुच्छेद 22(5) के संवैधानिक जनादेश के सख्त अनुपालन में पूरी की गई है। प्रत्येक चरण में निरोध प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से अपेक्षित संतोष प्राप्त किया गया है। याचिकाकर्ताओं द्वारा इस संबंध में कोई प्रक्रियात्मक दुर्बलता स्थापित नहीं की गई है, और तदनुसार, प्रश्न I का उत्तर याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध दिया जाता है।

II. क्या निरोध प्राधिकारी का संतोष कानून के अनुसार, प्रासंगिक और सन्निकट सामग्री पर, स्पष्ट और विशिष्ट आधारों के साथ प्राप्त किया गया था जो अनुच्छेद 22(5) के तहत एक प्रभावी अभ्यावेदन को सक्षम करने के लिए पर्याप्त हैं।

74. दूसरा प्रश्न जिसका उत्तर दिया जाना आवश्यक है वह यह है कि क्या सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार किया गया था या क्या बाहरी कारकों ने निरोध प्राधिकारी के मन को प्रभावित किया जिससे वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उक्त व्यक्ति (व्यक्तियों) द्वारा आगे के अपराधों को रोकने के लिए उन्हें निरुद्ध किया जाना चाहिए। प्रसंगवश, इस प्रश्न का उत्तर देना भी आवश्यक होगा कि क्या पहले निरोध

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



का आदेश देने और फिर निरुद्ध व्यक्ति की ओर से दाखिल अभ्यावेदन को अस्वीकार करके ऐसे आदेश को जारी रखकर उसकी पुष्टि करने में मस्तिष्क का प्रयोग प्रकट होता है या नहीं।

A. क्या सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर विचार किया गया था और क्या संतोष स्वतंत्र रूप से प्राप्त किया गया था?

निरोध प्राधिकारी की स्वतंत्रता और दिनांक 03.04.2025 की संसूचना (अमीना बेगम, पैरा 28.4)

75. याचिकाकर्ताओं के अभिलेख से गोपनीय अनुभाग से पुलिस अधीक्षक, जालौन को जारी की गई एक संसूचना दिनांक 03.04.2025 प्रकट होती है, जिसमें यह संकेत दिया गया था कि यदि याचिकाकर्ताओं को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो उनके द्वारा कथित अपराध को दोहराए जाने की संभावना है। निहितार्थ के रूप में यह तर्क दिया गया था कि इस संसूचना ने निरोध प्राधिकारी के निष्कर्ष को पहले से ही निर्धारित कर दिया था और निरोध आदेश स्वतंत्र रूप से मस्तिष्क के प्रयोग का परिणाम नहीं थे बल्कि किसी अन्य निकाय के निर्देश या प्रभाव के तहत पारित किए गए थे।

76. यह न्यायालय इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ है। स्वयं निरोध के आधारों की जांच ऐसे किसी भी अनुमान को खारिज करती है। आधारों में स्पष्ट रूप से दिनांक 03.04.2025 की संसूचना को स्थानीय आसूचना इकाई, उरई के निरीक्षक की एक रिपोर्ट के रूप में चिह्नित किया गया है, जो कमान की श्रृंखला के माध्यम से अग्रेषित एक क्षेत्र-स्तरीय खुफिया मूल्यांकन है। महत्वपूर्ण रूप से, यह दस्तावेज निरोध के आधारों के पांच अनुलग्नकों में से एक के रूप में संलग्न था और निरुद्ध व्यक्तियों को उनके अवलोकन के लिए प्रदान किया गया था, जो इसके उपयोग में पूर्ण पारदर्शिता को प्रदर्शित करता है। यह निरुद्ध करने का कोई निर्देश नहीं था; यह एक खुफिया इनपुट था, जो उस बहुस्तरीय सामग्री का एक घटक था जिसे प्रभारी निरीक्षक के प्रेषण पत्र दिनांक 25.04.2025, निरोध प्रस्ताव दिनांक 25.04.2025, क्षेत्राधिकारी कालपी और अपर पुलिस अधीक्षक जालौन के प्रेषण पत्रों दिनांक 26.04.2025, और पुलिस अधीक्षक जालौन के पत्र दिनांक 27.04.2025 के साथ निरोध प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था।

77. दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 के निरोध आदेश जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रशासनिक पदानुक्रम के विभिन्न स्तरों पर बहुविध अधिकारियों द्वारा किए गए इस समेकित, बहुस्तरीय मूल्यांकन के आधार पर पारित किए गए थे, जिसमें से प्रत्येक ने अपनी अनुशंसा अग्रेषित करने से पहले सामग्री का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन किया था। प्रभारी निरीक्षक से क्षेत्राधिकारी और अपर पुलिस अधीक्षक के माध्यम से पुलिस अधीक्षक और अंततः जिला मजिस्ट्रेट तक की क्रमिक रिपोर्टिंग श्रृंखला वास्तव में वही संस्थागत तंत्र है जिसकी परिकल्पना अधिनियम करता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि निरोध प्राधिकारी अपना संतोष विरचित करने से पहले एक क्षेत्र-परीक्षित, स्वतंत्र रूप से सत्यापित मूल्यांकन प्राप्त करे। इस न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं रखी गई है जो यह प्रदर्शित करे कि जिला मजिस्ट्रेट को निरोध आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था या उनके संतोष को किसी बाहरी प्राधिकारी द्वारा पहले से ही प्रभावित या अधिभावी कर दिया गया था। तदनुसार, अमीना बेगम के पैरा 28.4 की आवश्यकता संतुष्ट होती है।

प्रासंगिक परिस्थितियों पर मस्तिष्क का प्रयोग (अमीना बेगम, पैरा 28.2)

78. यह सुस्थापित है कि निरोध प्राधिकारी का आत्मनिष्ठ संतोष, यद्यपि आधारों की पर्याप्तता पर चुनौती के लिए खुला नहीं है, फिर भी बाहरी विचारों से प्रभावित हुए बिना सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर वास्तविक मस्तिष्क के प्रयोग को प्रतिबिंबित करना चाहिए। वर्तमान वाद में आधारों की एक विशेष

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



रूप से महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि निरोध प्राधिकारी ने स्पष्ट रूप से सही कानूनी परीक्षण का उल्लेख किया है। आधारों में स्वयं "इवेन टैम्पो आफ लाइफ" पद का उपयोग किया गया है जिसे हिंदी में "जनजीवन के सामान्य प्रवाह, सामान्य निर्वहन, सामान्य शान्ति, अमन चैन (इवेन टैम्पो आफ लाइफ)" के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राम मनोहर लोहिया (उपर्युक्त) और अरुण घोष (उपर्युक्त) में प्रतिपादित कानून और व्यवस्था तथा लोक व्यवस्था के बीच अंतर की वास्तविक कसौटी है। आधारों में इस पद का जानबूझकर किया गया उपयोग यह प्रदर्शित करता है कि निरोध प्राधिकारी ने न केवल एक अपराध कारित होने पर बल्कि विशेष रूप से सामुदायिक जीवन के सुचारु गति पर कथित गतिविधि के प्रभाव पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया, जो कि वही सटीक जांच है जिसकी कानून मांग करता है। यह प्रासंगिक वैधानिक उद्देश्य पर वास्तविक और सूचित मस्तिष्क के प्रयोग का एक सशक्त संकेतक है।

79. इसके अतिरिक्त, निरोध आदेश प्रत्येक निरुद्ध व्यक्ति सिकंदर, सैय्याज अली और हसनैन के संबंध में अन्वेषण में प्रकट उनकी व्यक्तिगत भूमिकाओं के आधार पर पृथक संतोष दर्ज करते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के दायरे और उद्देश्य से इतर किसी भी सामग्री का निरोध प्राधिकारी के संतोष को प्रभावित करना नहीं पाया गया है। तदनुसार, पैरा 28.2 की आवश्यकता संतुष्ट होती है।

तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक सामग्री (अमीना बेगम, पैरा 28.6)

80. जैसा कि खुदीराम दास (उपर्युक्त) में अभिनिर्धारित किया गया है, निरोध प्राधिकारी का संतोष उन सामग्रियों पर आधारित होना चाहिए जो तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक मूल्य की हों, आधार ऐसे होने चाहिए जिन्हें एक तर्कसंगत मानव उस तथ्य से जुड़ा हुआ मान सके जिसके संबंध में संतोष तक पहुंचना है। वर्तमान वाद में, निरोध प्राधिकारी के समक्ष सामग्री न तो अल्प थी और न ही काल्पनिक थी। इसमें शामिल थे: दिनांक 31.03.2025 की प्राथमिकी जिसमें 2-3 क्विंटल गोमांस की बरामदगी, मौके पर बंधे पाए गए मवेशी, और हड़्डियों, खाल तथा हथियारों की बरामदगी दर्ज थी; प्रभारी निरीक्षक, क्षेत्राधिकारी, अपर पुलिस अधीक्षक और पुलिस अधीक्षक की क्षेत्र रिपोर्टें; घटना के सामुदायिक प्रभाव का मूल्यांकन करने वाली स्थानीय आसूचना इकाई की रिपोर्ट दिनांक 03.04.2025; और जमानत पर रिहा होने पर अपराध दोहराए जाने की संभावना के संबंध में विशिष्ट जमीनी खुफिया जानकारी। सामूहिक रूप से देखने पर, यह तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक सामग्री का एक बड़ा हिस्सा विरचित करता है जो निरोध प्राधिकारी के संतोष का समर्थन करने में सक्षम है। तदनुसार, पैरा 28.6 की आवश्यकता संतुष्ट होती है।

जीवंत और सन्निकट संपर्क (अमीना बेगम, पैरा 28.7)

81. यह भी समान रूप से स्थापित है कि निरुद्ध व्यक्ति के पिछले आचरण और उसे निरुद्ध करने की अपरिहार्य आवश्यकता के बीच एक जीवंत और सन्निकट संपर्क होना चाहिए। पुरानी सामग्री पर आधारित निरोध, जिसका किसी प्रत्याशित भविष्य के कृत्य से कोई तार्किक संबंध न हो, को कायम नहीं रखा जा सकता है। वर्तमान वाद में, घटना दिनांक 30/31.03.2025 को हुई थी। निरोध आदेश दिनांक 25.04.2025 और 28.04.2025 को पारित किए गए थे, जो घटना के लगभग तीन से चार सप्ताह के भीतर थे, और महत्वपूर्ण रूप से, यह उस चरण में था जब दो प्रार्थीगण को जमानत दी जा चुकी थी और तीसरे का जमानत आवेदन लंबित था। आधारों में स्पष्ट रूप से यह दर्ज है कि निरुद्ध व्यक्ति जमानत प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे और रिहा होने पर समान अपराधों को दोहराने तथा सांप्रदायिक माहौल के दूषित होने की पूरी संभावना थी। घटना और जमानत आदेशों दोनों के साथ निरोध आदेशों की सन्निकटता दुर्भावना का प्रमाण नहीं है, बल्कि यह ठीक उसी स्थिति को परिलक्षित करती है जिससे

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



निपटने के लिए निवारक निरोध का कानून बनाया गया है: कि सामान्य आपराधिक प्रक्रिया, जिसमें जमानत दिया जाना शामिल है, लोक व्यवस्था के प्रतिकूल कृत्यों को रोकने के लिए अपर्याप्त हो सकती है। अभियोजन का लंबित होना या जमानत दिया जाना निरोध आदेश पारित करने में कोई बाधा नहीं है, जैसा कि इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती खंड में उल्लेख किया है। दिनांक 30/31.03.2025 की घटना और दिनांक 25/28.04.2025 के निरोध आदेशों के बीच का जीवंत संपर्क पर्याप्त रूप से सन्निकट है और इसे पुराना नहीं कहा जा सकता। तदनुसार, पैरा 28.7 की आवश्यकता संतुष्ट होती है।

अनुच्छेद 22(5) के तहत प्रभावी अभ्यावेदन हेतु आधारों की सटीकता और स्पष्टता (अमीना बेगम, पैरा 28.8 और 28.9)

82. संविधान का अनुच्छेद 22(5) और अधिनियम की धारा 8 मिलकर यह अपेक्षा करते हैं कि निरुद्ध व्यक्ति को संसूचित किए गए आधार सटीक, प्रासंगिक और सुसंगत हों तथा अस्पष्ट या आनुमानिक न हों, ताकि उसे एक प्रभावी अभ्यावेदन करने का सार्थक अवसर मिल सके। जैसा कि शालिनी सोनी(उपर्युक्त) के वाद में अभिनिर्धारित किया गया है, आधार स्वतः पर्याप्त और स्वतः स्पष्ट होने चाहिए, जिसमें न केवल निष्कर्ष बल्कि वे घटक तथ्यात्मक सामग्रियां भी शामिल होनी चाहिए जिन पर भरोसा किया गया है। वर्तमान वाद में, प्रत्येक निरुद्ध व्यक्ति पर तामील किए गए निरोध के आधारों में दिनांक 30/31.03.2025 की घटना के विशिष्ट विवरण, व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक निरुद्ध व्यक्ति को सौंपी गई भूमिका, की गई बरामदगी, कालपी शहर के नामजद मोहल्लों, ग्राम गुलोली और आसपास के क्षेत्रों में सामुदायिक प्रभाव, आवश्यक प्रशासनिक प्रतिक्रिया, और भविष्य के आचरण के संबंध में निरोध प्राधिकारी की आशंका का आधार शामिल है। पांच भरोसा किए गए दस्तावेज, जैसा कि प्रश्न I के विश्लेषण में पहले ही चर्चा की जा चुकी है, भी उसमें संलग्न थे। इस प्रकार आधार आनुमानिक लेबल नहीं हैं बल्कि एक विस्तृत, तथ्यात्मक वृत्तांत हैं जो प्रत्येक निरुद्ध व्यक्ति को यह सटीक रूप से समझने में सक्षम बनाते हैं कि उसे क्यों निरुद्ध किया जा रहा था और एक सूचित अभ्यावेदन करने की सुविधा देते हैं। यह तथ्य कि निरुद्ध व्यक्तियों ने वास्तव में दिनांक 07/08.05.2025 को तात्त्विक अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, जिन पर विधिवत विचार किया गया और अस्वीकार कर दिया गया, स्वतः ही यह दर्शाता है कि आधार इतने अस्पष्ट नहीं थे कि अभ्यावेदन करने में असमर्थ बना दें। इस न्यायालय के समक्ष किसी भी विशिष्ट आधार को अस्पष्ट, अस्तित्वहीन या उत्तर देने में असमर्थ होने के रूप में चुनौती नहीं दी गई है। तदनुसार, अमीना बेगम(उपर्युक्त) के पैरा 28.8 और 28.9 की आवश्यकताएं संतुष्ट होती हैं।

एकल घटना और पूर्व आपराधिक इतिहास की अनुपस्थिति

83. याचिकाकर्ताओं ने यह तर्क दिया है कि निरोध अनिवार्य रूप से एक एकल प्राथमिकी पर आधारित है और निरुद्ध व्यक्तियों का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है। यह सत्य है कि बिना किसी पूर्व आपराधिक इतिहास के, एक एकल घटना पर आधारित निवारक निरोध अधिक गहन संवीक्षा की मांग करता है। हालांकि, कानून निवारक निरोध के लिए एक पूर्व-शर्त के रूप में घटनाओं की न्यूनतम संख्या विहित नहीं करता है। आवश्यकता इस बात की है कि वह एकल घटना, यदि उस पर भरोसा किया गया है, ऐसी प्रकृति और परिमाण की होनी चाहिए जो भविष्य के पूर्वाग्रहपूर्ण आचरण के संबंध में निरोध प्राधिकारी की आशंका का तार्किक रूप से समर्थन करे। जैसा कि यह न्यायालय प्रश्न III के अंतर्गत अधिक विस्तार से जांच करेगा, वर्तमान वाद में कथित गतिविधि की प्रकृति, चैत्र नवरात्रि के पहले दिन ईद के त्योहार के अवसर पर इसकी सटीक समय-सीमा, नामजद मोहल्लों में सांप्रदायिक सद्भाव पर इसका प्रभाव, और इसके कारण आवश्यक प्रशासनिक प्रतिक्रिया का पैमाना कोई सामान्य या पृथक

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



अपराध नहीं है जो विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत चरित्र का हो। इसलिए, पूर्व आपराधिक इतिहास की अनुपस्थिति में भी, निरोध प्राधिकारी के संतोष को तर्कहीन या संबोधात्मक आधार के बिना नहीं कहा जा सकता है।

B. क्या निरोध की पुष्टि में मस्तिष्क का प्रयोग प्रकट होता है?

84. इस प्रश्न का दूसरा भाग यह जांच करने की मांग करता है कि क्या बाद के चरण, अर्थात् निरुद्ध व्यक्तियों के अभ्यावेदनों की अस्वीकृति और राज्य सरकार द्वारा निरोध आदेशों की पुष्टि, भी वास्तविक और स्वतंत्र मस्तिष्क के प्रयोग को परिलक्षित करते हैं, या वे केवल प्रारंभिक निरोध पर यांत्रिक रूप से रबर-स्टैंप लगाने की कवायद मात्र थे।

85. यह न्यायालय पाता है कि अभिलेख प्रत्येक बाद के चरण में सार्थक संलिप्तता प्रकट करता है। निरुद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत दिनांक 07/08.05.2025 के अभ्यावेदनों पर राज्य सरकार द्वारा स्वतंत्र रूप से विचार किया गया था। सैय्याज अली और हसनैन के अभ्यावेदन दिनांक 20.05.2025 को, और सिकंदर का अभ्यावेदन दिनांक 21.05.2025 को अस्वीकार कर दिया गया था, जो अभ्यावेदन दाखिल होने के उचित समय के भीतर पहुंचे सुविचारित निर्णयों को परिलक्षित करते हैं, और अगले दिन निरुद्ध व्यक्तियों को संसूचित किए गए थे। अभ्यावेदनों की प्रतियां परामर्शदाता बोर्ड के समक्ष भी रखी गई थीं, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि निरुद्ध व्यक्तियों का अपना पक्ष स्वतंत्र वैधानिक निकाय के समक्ष मौजूद था।

86. परामर्शदाता बोर्ड ने दिनांक 28.05.2025 को निरुद्ध व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से सुनने के बाद, जिनमें से प्रत्येक एक परम मित्र के साथ उपस्थित हुआ था, और सरकार की सामग्री पर विचार करने के बाद, स्वतंत्र रूप से यह राय दी कि प्रत्येक निरुद्ध व्यक्ति के निवारक निरोध के लिए पर्याप्त कारण मौजूद थे। इस प्रकार बोर्ड की राय किसी यांत्रिक कवायद का परिणाम नहीं है बल्कि दोनों पक्षों को सुनने के बाद एक स्वतंत्र संस्थागत मूल्यांकन है।

87. सबसे महत्वपूर्ण रूप से, राज्य सरकार ने परामर्शदाता बोर्ड की राय पर केवल एक औपचारिकता के रूप में कार्रवाई नहीं की। पुष्टि आदेश दिनांक 12.06.2025 यह दर्ज करता है कि राज्य सरकार ने संपूर्ण सामग्री पर स्वतंत्र रूप से पुनर्विचार करने के बाद, अधिनियम की धारा 12 और 13 के अंतर्गत निरोध आदेशों की पुष्टि की। पुष्टि के चरण में यह स्वतंत्र पुनर्विचार एक महत्वपूर्ण सुरक्षा उपाय है, क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि निरोध प्राधिकारी का संतोष केवल एक बार का, पुनः न जांचा गया निष्कर्ष नहीं है बल्कि निरुद्ध व्यक्तियों के अपने अभ्यावेदनों सहित सभी उपलब्ध सामग्री के आलोक में निरोध की आवश्यकता का एक निरंतर मूल्यांकन है। इस प्रकार पुष्टि आदेश एक नए, स्वतंत्र मस्तिष्क के प्रयोग को परिलक्षित करता है और यह न तो प्रारंभिक निरोध आदेश पर और न ही परामर्शदाता बोर्ड की राय पर केवल रबर-स्टैंप लगाना मात्र है।

88. इस न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं रखी गई है जो यह संकेत दे कि अभ्यावेदनों की अस्वीकृति या निरोध आदेशों की पुष्टि सरसरी, यांत्रिक या मस्तिष्क के प्रयोग के बिना थी। अमीना बेगम(उपर्युक्त) के पैरा 28.1 की यह आवश्यकता, कि आदेश निरोध प्राधिकारी के अपेक्षित संतोष पर आधारित होना चाहिए, तदनुसार न केवल प्रारंभिक निरोध आदेश के चरण में बल्कि कार्यपालिका के निर्णय लेने की संपूर्ण श्रृंखला में संतुष्ट पाई जाती है।

89. इस प्रकार, अभिलेख पर मौजूद सामग्री की जांच करने और अमीना बेगम(उपर्युक्त) के मापदंडों के विरुद्ध उसका परीक्षण करने पर, यह न्यायालय पाता है कि निरोध प्राधिकारी का संतोष स्वतंत्र रूप से

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



और कानूनी रूप से प्राप्त किया गया था, जो क्षेत्र के मूल्यांकनों और खुफिया इनपुटों की एक बहुस्तरीय श्रृंखला से ली गई प्रासंगिक और तार्किक रूप से संबोधात्मक सामग्री पर आधारित था, जिसका प्रत्याशित भविष्य के आचरण के साथ एक जीवंत और सन्निकट संपर्क था। निरुद्ध व्यक्तियों को दिए गए आधार सटीक, सुसंगत, स्वतः स्पष्ट थे और पांच संलग्न अनुलग्नकों द्वारा समर्थित थे, जिससे प्रभावी अभ्यावेदन संभव हो सके जिन पर विधिवत विचार किया गया। निरोध प्राधिकारी ने आधारों में ही स्पष्ट रूप से "इवेन टैम्पो आफ लाइफ" मानक का उल्लेख करके सही कानूनी परीक्षण का प्रयोग प्रदर्शित किया। मस्तिष्क का प्रयोग न केवल प्रारंभिक निरोध आदेश में बल्कि अभ्यावेदनों की सुविचारित अस्वीकृति, निरुद्ध व्यक्तियों को सुनने के बाद परामर्शदाता बोर्ड द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन, और पुष्टि के चरण में राज्य सरकार द्वारा स्वतंत्र पुनर्विचार में भी पूरी तरह प्रकट होता है। निरोध प्राधिकारी के संतोष में या आधारों की स्पष्टता में कोई दुर्बलता स्थापित नहीं की गई है।

90. तदनुसार, प्रश्न II का उत्तर याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध दिया जाता है।

III. क्या आक्षेपित निरोध आदेश ऐसी सामग्री पर आधारित हैं जो वैध रूप से "लोक व्यवस्था" से संबंधित हैं, जैसा कि केवल एक "कानून और व्यवस्था" की स्थिति से भिन्न है।

91. वर्तमान वाद में अधिनियम की धारा 3 पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए, सरकार को इस आत्मनिष्ठ संतोष पर पहुंचना होता है कि उक्त व्यक्ति को लोक व्यवस्था के अनुरक्षण के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से निरुद्ध किया जाना आवश्यक है। इसलिए, हम पहले खुद को इस जांच की ओर निर्देशित करते हैं कि "लोक व्यवस्था" क्या है। अधिनियम की धारा 3(2) के अंतर्गत किसी निरुद्ध व्यक्ति के विरुद्ध निरोध आदेश उसे "लोक व्यवस्था के अनुरक्षण के प्रतिकूल किसी रीति से कार्य करने से रोकने की दृष्टि से" जारी किया जा सकता है। इसलिए, यदि आक्षेपित निरोध आदेश उन अपराधों के बीच अंतर करने में विफल रहता है जो "कानून और व्यवस्था" की स्थिति पैदा करते हैं और जो "लोक व्यवस्था" को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं या प्रभावित करने की प्रवृत्ति रखते हैं, तो वह अक्षम हो जाएगा।

92. निरोध आदेशों के संबंध में अब जिसे संबोधित करने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या कथित कृत्य जिनके लिए निरुद्ध व्यक्ति को निरोध में रखा गया है, वे "लोक व्यवस्था" के प्रतिकूल हैं। इस मुद्दे को संबोधित करते समय, पहले यह समझना होगा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "कानून और व्यवस्था" से संबंधित अशांति और "लोक व्यवस्था" को कारित अशांति के बीच किस प्रकार अंतर किया है।

93. यह सर्वविदित है कि सभी मामलों में कानून का उल्लंघन लोक अव्यवस्था का कारण नहीं बनता है। निर्णयों की एक श्रृंखला में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "कानून और व्यवस्था" और "लोक व्यवस्था" के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से तराशा है। राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य²⁶ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने "कानून और व्यवस्था" तथा "लोक व्यवस्था" के बीच के अंतर को प्रतिपादित किया। माननीय एम. हिदायतुल्ला, न्यायमूर्ति (जैसा कि तब वे मुख्य न्यायमूर्ति थे) ने इसे निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया था:

"54. ... लोक व्यवस्था यदि अशांत होती है, तो उसे लोक अव्यवस्था का कारण बनना चाहिए। शांति का प्रत्येक उल्लंघन लोक अव्यवस्था का कारण नहीं बनता है। जब दो शराबी आपस में झगड़ते और लड़ते हैं तो अव्यवस्था होती है लेकिन लोक अव्यवस्था नहीं होती। उनसे कानून और व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियों के तहत निपटा जा सकता है लेकिन उन्हें इस आधार पर निरुद्ध नहीं किया जा सकता कि वे

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु हैं और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



लोक व्यवस्था को अशांत कर रहे थे। मान लीजिए कि वे दो लड़ाके विरोधी समुदायों के थे और उनमें से एक ने सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काने का प्रयास किया। यह समस्या अभी भी कानून और व्यवस्था की है लेकिन यह लोक अव्यवस्था की आशंका पैदा करती है। अन्य उदाहरणों की कल्पना की जा सकती है। कानून का उल्लंघन हमेशा व्यवस्था को प्रभावित करता है लेकिन इससे पहले कि यह कहा जा सके कि यह लोक व्यवस्था को प्रभावित करता है, इसे बड़े पैमाने पर समुदाय या जनता को प्रभावित करना चाहिए। इस प्रकार कानून और व्यवस्था की एक मात्र अशांति जो अव्यवस्था की ओर ले जाती है, अनिवार्य रूप से भारत रक्षा अधिनियम के तहत कार्रवाई के लिए पर्याप्त नहीं है, लेकिन वे अशांतियां जो लोक व्यवस्था को नष्ट करती हैं, वे पर्याप्त हैं। ...

55. इस प्रकार यह प्रतीत होगा कि ठीक उसी प्रकार जैसे इस न्यायालय के निर्णयों में (पहले उद्धृत) “लोक व्यवस्था” के बारे में कहा गया था कि इसमें “राज्य की सुरक्षा” को प्रभावित करने वाली अशांतियों से कम गंभीरता की अव्यवस्थाएं शामिल हैं, “कानून और व्यवस्था” में भी “लोक व्यवस्था” को प्रभावित करने वाली अशांतियों से कम गंभीरता की अव्यवस्थाएं शामिल हैं। किसी को तीन संकेंद्रित वृत्तों की कल्पना करनी होगी। कानून और व्यवस्था सबसे बड़े वृत्त का प्रतिनिधित्व करती है जिसके भीतर अगला वृत्त लोक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है और सबसे छोटा वृत्त राज्य की सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करता है। तब यह देखना आसान है कि एक कृत्य कानून और व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है लेकिन लोक व्यवस्था को नहीं, ठीक उसी तरह जैसे एक कृत्य लोक व्यवस्था को प्रभावित कर सकता है लेकिन राज्य की सुरक्षा को नहीं।”

94. इसके अतिरिक्त, जैसा कि अरुण घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1970) 1 एससीसी 98 में दर्शाया गया है, यह स्पष्ट है कि किसी कृत्य को लोक व्यवस्था में अशांति के रूप में अर्हित होने के लिए, उस विशिष्ट गतिविधि का प्रभाव व्यापक समुदाय या आम जनता पर होना चाहिए, जो भय, आतंक या असुरक्षा की भावनाएं उत्पन्न करे। सार्वजनिक शांति में सामान्य अशांति का प्रत्येक मामला लोक व्यवस्था को प्रभावित नहीं करता है और जो प्रश्न पूछा जाना है, वह यह है: क्या दोषपूर्ण कृत्य समुदाय के जीवन के सामान्य प्रवाह में अशांति पैदा करता है ताकि वह लोक व्यवस्था की अशांति की सीमा तक पहुंचे या यह समाज की शांति को अक्षुण्ण छोड़ते हुए केवल एक व्यक्ति को प्रभावित करता है?

95. अरुण घोष के वाद में, निरुद्ध व्यक्ति को इसलिए निरुद्ध किया गया था क्योंकि वह युवा लड़कियों को छेड़ने, परेशान करने और उनके साथ दुर्यवहार करने तथा एक मोहल्ले के व्यक्तियों पर हमलों में संलिप्त था। यह स्वीकार करते हुए कि याचिकाकर्ता निरुद्ध व्यक्ति का आचरण निंदनीय हो सकता है, यह आगे अभिनिर्धारित किया गया कि यह उस स्थिति तक नहीं पहुंचता है जहां यह कहा जा सके कि बड़े पैमाने पर समुदाय अशांत हो रहा था या दूसरे शब्दों में लोक व्यवस्था का उल्लंघन था या लोक व्यवस्था के उल्लंघन की संभावना थी। आक्षेपित आदेश को निरस्त करने की प्रक्रिया में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम मनोहर लोहिया बनाम बिहार राज्य, 1965 एससीसी ऑनलाइन एससी 9 में दिए गए निर्णय का संदर्भ देते हुए निम्नानुसार निर्णय दिया:

“3. ... लोक व्यवस्था के बारे में कहा गया था कि इसमें कानून और व्यवस्था की तुलना में समुदाय का अधिक हिस्सा शामिल है। लोक व्यवस्था पूरे देश या किसी निर्दिष्ट मोहल्ले को ध्यान में रखते हुए समुदाय के जीवन की सुचारु गति (इवेन टैम्पो) है। लोक व्यवस्था की अशांति को व्यक्तियों के विरुद्ध निर्देशित उन कृत्यों से अलग किया जाना चाहिए जो समाज को सार्वजनिक शांति में सामान्य अशांति कारित करने की सीमा तक अशांत नहीं करते हैं। यह अशांति की डिग्री और किसी मोहल्ले में समुदाय के

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



जीवन पर इसका प्रभाव है जो यह निर्धारित करता है कि क्या अशांति केवल कानून और व्यवस्था का उल्लंघन है। ... यह हमेशा नुकसान की डिग्री और समुदाय पर उसके प्रभाव का प्रश्न होता है। ... इस प्रश्न का सामना प्रत्येक मामले में तथ्यों के आधार पर किया जाना है। ऐसा कोई सूत्र नहीं है जिससे एक मामले को दूसरे से अलग किया जा सके।”

96. कुसो साह बनाम बिहार राज्य, (1974) 1 एससीसी 185 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“4. ... दोनों अवधारणाओं की स्पष्ट रूप से परिभाषित रूपरेखा है, यह भली-भांति स्थापित है कि चोरी और हमले के छिटपुट और असंगठित अपराध लोक व्यवस्था के मामले नहीं हैं क्योंकि वे सार्वजनिक जीवन के सुचारु प्रवाह को प्रभावित करने की प्रवृत्ति नहीं रखते हैं। कानून के उल्लंघन कुछ सीमा तक अव्यवस्था की ओर ले जाने के लिए बाध्य हैं लेकिन कानून का प्रत्येक उल्लंघन अनिवार्य रूप से लोक व्यवस्था में परिणत नहीं होता है। ...

6. ... न्यायालय के विचारण के सुरक्षात्मक उपाय के बिना किसी व्यक्ति को निरुद्ध करने की शक्ति इतनी कड़ा (अत्यधिक) है कि इसके प्रति उदार व्याख्या की अनुमति नहीं दी जा सकती और इसलिए न्यायालयों को यह सुनिश्चित करने के लिए तत्पर रहना चाहिए कि निरोध प्राधिकारी उन सीमाओं का अतिक्रमण न करे जिसके अधीन रहते हुए ही इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।”

97. उपर्युक्त न्यायिक दृष्टांतों का विश्लेषण करने के पश्चात, इस न्यायालय को सबसे पहले “कानून और व्यवस्था” तथा “लोक व्यवस्था” के बीच स्थापित अंतर को लागू करना चाहिए क्योंकि कानून का प्रत्येक उल्लंघन लोक व्यवस्था को अशांत नहीं करता है; उस कृत्य को व्यापक पैमाने पर समुदाय या जनता को प्रभावित करना चाहिए और मोहल्ले में “जनजीवन के सामान्य प्रवाह (इवेन टैम्पो आफ लाइफ)” को अशांत करना चाहिए। इसलिए, मुख्य जांच उसकी डिग्री, पहुंच और प्रभाव की है: क्या वह घटना (और प्रत्याशित भविष्य का आचरण) एक पृथक अपराध के बजाय पूरे समुदाय में अशांति (भय या आतंक या संभावित सांप्रदायिक तनाव) को दर्शाती है?

वर्तमान वाद के तथ्यों पर अनुप्रयोग

98. उपर्युक्त सिद्धांतों को मार्गदर्शक प्रकाश स्तंभ मानते हुए, यह न्यायालय अब यह जांच करने के लिए आगे बढ़ता है कि क्या वर्तमान वाद में निरोध प्राधिकारी के समक्ष मौजूद सामग्री वैध रूप से “कानून और व्यवस्था” की सीमा को पार करके “लोक व्यवस्था” में प्रवेश करती है।

99. निरोध के आधारों के निष्पक्ष पाठन से, दिनांक 30/31.03.2025 की घटना को एक पृथक अपराध के रूप में चिह्नित नहीं किया जा सकता जो केवल शामिल व्यक्तियों को प्रभावित करता है। निम्नलिखित कारणों से, आधार विशेष रूप से गंभीर चरित्र की एक समुदाय-व्यापी अशांति का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

समय-सीमा: एक दोहरे त्योहार का संगम

100. यह घटना चैत्र नवरात्रि के पहले दिन घटित हुई थी। जैसा कि आधारों में स्पष्ट रूप से दर्ज है, इसके ठीक अगले दिन ईद थी, जो इस्लामी कैलेंडर के सबसे महत्वपूर्ण और संवेदनशील त्योहारों में से एक है। इन दो त्योहारों का संगम, जो हिंदू समुदाय के लिए सबसे पवित्र अवसरों में से एक और मुस्लिम समुदाय के लिए सबसे महत्वपूर्ण है, ने उस मोहल्ले में असाधारण सांप्रदायिक संवेदनशीलता का माहौल पैदा कर दिया था। अभियुक्तों द्वारा नवरात्रि के पहले दिन गोवंश के पशुओं का वध करना, ऐसी

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



परिस्थितियों में जहां हिंदू समुदाय द्वारा गाय को पवित्र मानकर पूजा जाता है, केवल एक आपराधिक कृत्य नहीं था, बल्कि यह एक ऐसा कृत्य था जिसने अत्यधिक सांप्रदायिक संवेदनशीलता के क्षण में समुदाय के एक बड़े हिस्से की धार्मिक भावनाओं पर सीधे और प्रत्यक्ष रूप से आघात किया। आधार दर्ज करते हैं कि इससे हिंदू समुदाय की भावनाएं आहत हुईं और सांप्रदायिक उन्माद फैलने का डर वास्तविक और तात्कालिक था। इस प्रकार घटना की समय-सीमा इसे गुणात्मक रूप से एक सामान्य आपराधिक अपराध की श्रेणी से ऊपर उठाकर उस क्षेत्र में ले जाती है जहां सामुदायिक जीवन और लोक व्यवस्था पर इसका प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

समुदाय-व्यापी भय, आतंक और व्यवहार में परिवर्तन

101. निरोध के आधार विशिष्टता के साथ दर्ज करते हैं कि इस घटना के कारण न केवल घटना के पक्षों के बीच बल्कि कालपी शहर, ग्राम गुलोली और आसपास के क्षेत्रों की आम जनता के बीच भय और आतंक उत्पन्न हुआ। यह भय अमूर्त या आनुमानिक नहीं था, यह व्यवहार में ठोस परिवर्तन के रूप में प्रकट हुआ: कालपी शहर और आसपास के क्षेत्रों की आम जनता ने डर के मारे अपने मवेशियों को अपने घरों से बाहर छोड़ना बंद कर दिया और उन्हें बाहर बांधना बंद कर दिया। यह उस प्रकार के समुदाय-व्यापी प्रभाव का एक सटीक और विशिष्ट संकेतक है जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अरुण घोष(उपर्युक्त) के वाद में समुदाय के “जनजीवन के सामान्य प्रवाह (इवेन टैम्पो आफ लाइफ)” की अशांति के रूप में वर्णित किया था। एक पूरे मोहल्ले में दैनिक कृषि और सामुदायिक जीवन के एक सामान्य पहलू, अर्थात् मवेशियों को रखने और चराने में व्यवधान डालना, कानून और व्यवस्था की स्थिति का लक्षण नहीं है; यह इस बात का साक्ष्य है कि अशांति ने सामुदायिक जीवन के सामान्य प्रवाह में प्रवेश कर लिया है।

दो समुदायों के बीच तनाव और सांप्रदायिक हिंसा का जोखिम

102. आधार आगे दर्ज करते हैं कि इस घटना ने कालपी शहर और आसपास के क्षेत्रों में हिंदू और मुस्लिम समुदायों के लोगों के बीच एक तनावपूर्ण माहौल पैदा कर दिया। आम जनता इस घटना को दंगा फसाद कराने की साजिश के रूप में देखने लगी। प्रदर्शनों की तैयारियां शुरू हो गई थीं, और सामाजिक तथा धार्मिक संगठनों द्वारा सख्त कार्रवाई की मांग करते हुए पत्र सौंपे गए थे। स्थानीय आसूचना इकाई की रिपोर्ट दिनांक 03.04.2025, जो कि एक समकालीन क्षेत्र मूल्यांकन है, न कि बाद में तैयार किया गया विवरण, ने दर्ज किया कि “लोक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी थी” और सांप्रदायिक सद्भाव के बिगड़ने की प्रबल संभावना थी। यह ठीक उसी प्रकार का अंतर-सामुदायिक तनाव है जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम मनोहर लोहिया(उपर्युक्त) के वाद में लोक अव्यवस्था की आशंका पैदा करने वाला बताया था, जो एक मात्र कानून और व्यवस्था की समस्या से आगे बढ़कर उस मोहल्ले में सांप्रदायिक सह-अस्तित्व के ताने-बाने को खतरे में डालता है।

अभूतपूर्व प्रशासनिक प्रतिक्रिया

103. इस घटना के प्रति प्रशासनिक प्रतिक्रिया का पैमाना और प्रकृति स्वतः ही लोक व्यवस्था की अशांति की डिग्री का एक सशक्त संकेतक है। आधार दर्ज करते हैं कि तनाव, भय और आतंक के माहौल को प्रबंधित और नियंत्रित करने के लिए निम्नलिखित असाधारण उपाय किए गए थे: जिले के अन्य थाना क्षेत्रों के पुलिस बलों को कालपी शहर और ग्राम गुलोली में संवेदनशील स्थानों पर पिकेट और गश्ती दलों के रूप में तैनात किया गया था; कालपी शहर में दंगा नियंत्रण अभ्यास (मॉक ड्रिल) आयोजित किया गया था; पुलिस अधीक्षक जालौन, प्रभारी निरीक्षक कालपी, उप-जिला मजिस्ट्रेट कालपी और क्षेत्राधिकारी कालपी ने व्यक्तिगत रूप से पैदल गश्त की थी; पर्याप्त पुलिस बल ने दिन और रात दोनों

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



समय संवेदनशील स्थानों पर पैदल गश्त की; सुरक्षा की भावना पैदा करने के लिए आम जनता के साथ संपर्क स्थापित किया गया; और शांति समिति की बैठक आयोजित की गई तथा दोनों समुदायों के साथ संवाद किया गया। यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि दंगा नियंत्रण उपायों की तैनाती, शांति समिति की बैठकों का आयोजन, और गश्त पर वरिष्ठ जिला अधिकारियों की व्यक्तिगत उपस्थिति वास्तविक लोक व्यवस्था के भंग होने की स्थितियों के लिए आरक्षित प्रतिक्रियाएं हैं, न कि सामान्य कानून और व्यवस्था की घटनाओं के लिए जिन्हें सामान्य पुलिसिंग के माध्यम से प्रबंधित किया जा सकता है।

निरोध प्राधिकारी द्वारा सही कानूनी परीक्षण का अनुप्रयोग

104. जैसा कि यह न्यायालय प्रश्न II के संदर्भ में पहले ही संज्ञान ले चुका है, निरोध के आधारों में स्वयं "जनजीवन के सामान्य प्रवाह, सामान्य निर्वहन, सामान्य शान्ति, अमन चैन (इवेन टैम्पो आफ लाइफ)" पद का उपयोग किया गया है और यह दर्ज किया गया है कि निरुद्ध व्यक्तियों की गतिविधियां लोक व्यवस्था के अनुरक्षण के प्रतिकूल हो गई हैं। इस पद का जानबूझकर और सचेत रूप से किया गया उपयोग, जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राम मनोहर लोहिया(उपर्युक्त) और अरुण घोष(उपर्युक्त) के वादों में प्रतिपादित कसौटी है, यह प्रदर्शित करता है कि निरोध प्राधिकारी कानून और व्यवस्था तथा लोक व्यवस्था के बीच के अंतर के प्रति सचेत था और उसने सोच-समझकर यह पाया कि वर्तमान वाद उत्तरार्द्ध की श्रेणी के भीतर आता है। इस प्रकार वर्तमान वाद उन मामलों से तात्त्विक रूप से भिन्न है जहां निरोध आदेशों को इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि निरोध प्राधिकारी ने उस अंतर के सार में शामिल हुए बिना किसी अपराध को केवल लोक व्यवस्था की अशांति के रूप में चिह्नित कर दिया था।

भविष्य के पूर्वाग्रहपूर्ण आचरण की आशंका

105. निवारक निरोध का उद्देश्य पिछले आचरण को दंडित करना नहीं है, बल्कि वैधानिक उद्देश्य के प्रतिकूल भविष्य के आचरण को रोकना है। आधारों में स्पष्ट रूप से दर्ज है कि जमानत पर रिहा होने पर, इस बात की पूरी संभावना है कि निरुद्ध व्यक्ति फिर से गोवंश वध के समान अपराध करेंगे, और कालपी शहर तथा आसपास के क्षेत्रों में सांप्रदायिक माहौल को दूषित करने का हर संभव प्रयास करेंगे। यह आशंका काल्पनिक नहीं है, यह मूल घटना की प्रकृति, पैमाने और सांप्रदायिक प्रभाव, स्थानीय आसूचना इकाई के खुफिया मूल्यांकन और प्रशासनिक पदानुक्रम के विभिन्न स्तरों पर बहुविध अधिकारियों के क्षेत्र-स्तरीय मूल्यांकन में निहित है। क्षेत्र की सांप्रदायिक संवेदनशीलता, त्योहारों के संगम और अत्यधिक सांप्रदायिक उकसावे की परिस्थितियों में कथित कृत्यों को कारित करने के लिए निरुद्ध व्यक्तियों की प्रदर्शित इच्छा को देखते हुए, निरोध प्राधिकारी की भविष्य के पूर्वाग्रहपूर्ण आचरण की आशंका को तर्कसंगत आधार के बिना नहीं कहा जा सकता है।

वर्तमान वाद अरुण घोष नहीं है

106. अरुण घोष(उपर्युक्त) के वाद में, निरुद्ध व्यक्ति का निंदनीय आचरण—युवा लड़कियों को छेड़ना, परेशान करना और उनके साथ दुर्व्यवहार करना—लोक व्यवस्था के दायरे में नहीं पाया गया क्योंकि इसने केवल विशिष्ट व्यक्तियों को प्रभावित किया और बड़े पैमाने पर समुदाय को अशांत नहीं किया। वर्तमान वाद पूरी तरह से अलग चरित्र का है। यहाँ कथित गतिविधि ने केवल सीधे तौर पर शामिल व्यक्तियों को प्रभावित नहीं किया, इसने कई मोहल्लों में समुदाय-व्यापी भय और व्यवहार में परिवर्तन उत्पन्न किया, हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच अंतर-सामुदायिक तनाव पैदा किया, सांप्रदायिक हिंसा भड़काने का जोखिम उत्पन्न किया, दंगा नियंत्रण उपायों और शांति समिति के हस्तक्षेपों को आवश्यक

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



बनाया, और इसके सबसे पवित्र अवसरों में से एक पर समुदाय के एक बड़े हिस्से की धार्मिक भावनाओं पर आघात किया। वर्तमान वाद में कथित गतिविधि की डिग्री, पहुंच और प्रभाव इसे विशिष्ट रूप से व्यक्ति-निर्देशित आचरण की अरुण घोष श्रेणी से परे और वास्तविक लोक व्यवस्था की अशांति के क्षेत्र में रखता है जैसा कि राम मनोहर लोहिया(उपर्युक्त) और कुसो साह(उपर्युक्त) के वाद में वर्णित है।

107. इस प्रकार, “कानून और व्यवस्था” तथा “लोक व्यवस्था” के बीच के अंतर को शासित करने वाले स्थापित कानूनी सिद्धांतों के आलोक में निरोध के आधारों की सावधानीपूर्वक जांच करने पर, यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित निरोध आदेश ऐसी सामग्री पर आधारित हैं जो वैध और स्पष्ट रूप से “लोक व्यवस्था” से संबंधित है। कथित गतिविधि और उसके बाद के परिणाम—समुदाय-व्यापी भय और व्यवहार में परिवर्तन, अंतर-सामुदायिक तनाव, सांप्रदायिक हिंसा का जोखिम, असाधारण प्रशासनिक प्रतिक्रिया, और लोक व्यवस्था के नष्ट होने का समकालीन खुफिया मूल्यांकन—सामूहिक रूप से नामजद मोहल्लों में सामुदायिक जीवन के सुचारु गति की अशांति को स्थापित करते हैं जो एक पृथक आपराधिक अपराध से कहीं आगे जाता है। निरोध प्राधिकारी के समक्ष न केवल लोक व्यवस्था की अशांति स्थापित करने वाली तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक सामग्री मौजूद थी, बल्कि उसने आधारों में ही स्पष्ट रूप से सही कानूनी परीक्षण का प्रयोग भी किया था। ऐसा कोई मामला स्थापित नहीं किया गया है कि निरोध आदेश केवल कानून और व्यवस्था की स्थिति पर आधारित हैं जिसे लोक व्यवस्था की चिंता के रूप में पेश किया गया है।

108. तदनुसार, प्रश्न III का उत्तर याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध दिया जाता है।

निष्कर्ष एवं परिणाम

109. हमारे संविधान के निर्माता पिताओं और माताओं द्वारा एक असाधारण उपाय के रूप में परिकल्पित निवारक निरोध को नियमित आधार पर लागू करके सामान्य नहीं बनाया जाना चाहिए। निवारक निरोध की बेड़ियों को खोलने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि हमारे संविधान में निहित सुरक्षा उपायों, विशेष रूप से अनुच्छेद 14, 19 और 21 द्वारा निर्मित “स्वर्ण त्रिभुज” के अंतर्गत, अक्षरों और भावना में लागू किया जाए। इस आलोक में, एक बार जब ऐसे प्रावधान के दुरुपयोग के विरुद्ध सुरक्षा उपाय और परीक्षण संतुष्ट हो जाते हैं, तो लोक व्यवस्था को अशांत करने के जोखिम को शुरुआत में ही दबाने के लिए एक निवारक निरोध आदेश को कायम रखा जा सकता है।

110. पूर्वगामी चर्चा को देखते हुए, यह न्यायालय विचार के लिए तीन प्रश्नों पर अपने निष्कर्ष निम्नानुसार दर्ज करता है:

क. प्रश्न I पर, यह न्यायालय पाता है कि निवारक निरोध को शासित करने वाले संवैधानिक और वैधानिक सुरक्षा उपायों की संपूर्ण श्रृंखला—निरोध आदेश पारित किए जाने और राज्य सरकार द्वारा उसके अनुमोदन से लेकर, भरोसा की गई सभी सामग्रियों के साथ आधारों की संसूचना, अभ्यावेदनों पर विचार, परामर्शदाता बोर्ड को निर्देश और उसके समक्ष स्वतंत्र सुनवाई, और राज्य सरकार द्वारा अंतिम पुष्टि तक—राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 की धारा 3(4), 3(5), 8, 10, 11, 12 और 13 के अंतर्गत विहित समय-सीमाओं और आवश्यकताओं के तथा अनुच्छेद 22(5) के संवैधानिक जनादेश के सख्त अनुपालन में पूरी की गई है। कोई प्रक्रियात्मक दुर्बलता स्थापित नहीं की गई है।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



ख. प्रश्न II पर, यह न्यायालय पाता है कि निरोध प्राधिकारी का संतोष क्षेत्र के मूल्यांकनों और खुफिया इनपुटों की एक बहुस्तरीय श्रृंखला से ली गई प्रासंगिक और तर्कसंगत रूप से संबोधात्मक सामग्री पर स्वतंत्र रूप से और कानूनी रूप से प्राप्त किया गया था। निरुद्ध व्यक्तियों पर तामील किए गए आधार सटीक, सुसंगत और स्वतः स्पष्ट थे, जो संलग्न पांच दस्तावेजों द्वारा समर्थित थे, जिनमें प्रभारी निरीक्षक कोतवाली कालपी का प्रेषण पत्र, निरोध प्रस्ताव, क्षेत्राधिकारी कालपी और अपर पुलिस अधीक्षक जालौन के प्रेषण पत्र, स्थानीय आसूचना इकाई की रिपोर्ट दिनांक 03.04.2025, और पुलिस अधीक्षक जालौन का पत्र शामिल हैं, जिनमें से प्रत्येक मूल्यांकन के एक स्वतंत्र स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, और सामूहिक रूप से एक सुदृढ़ साक्ष्य आधार विरचित करता है जिसे प्रभावी अभ्यावेदन सक्षम करने के लिए पारदर्शी रूप से निरुद्ध व्यक्तियों के समक्ष रखा गया था। उन अभ्यावेदनों पर प्रत्येक चरण में विधिवत विचार किया गया और उन्हें अस्वीकार कर दिया गया। मस्तिष्क का प्रयोग न केवल प्रारंभिक निरोध आदेश में बल्कि पूरे मामले में प्रकट होता है, अर्थात् अभ्यावेदनों की सुविचारित अस्वीकृति में, निरुद्ध व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से सुनने के बाद परामर्शदाता बोर्ड द्वारा स्वतंत्र मूल्यांकन में, और पुष्टि के चरण में राज्य सरकार द्वारा स्वतंत्र पुनर्विचार में। निरोध प्राधिकारी ने आधारों में ही स्पष्ट रूप से "जनजीवन के सामान्य प्रवाह (इवेन टैम्पो आफ लाइफ)" मानक का उल्लेख करके सही कानूनी परीक्षण का प्रयोग प्रदर्शित किया, जो वैधानिक भाषा के केवल यांत्रिक उपयोग को नहीं बल्कि उस सटीक कानूनी अंतर के साथ एक सचेत और सूचित संलिप्तता को दर्शाता है जिसकी कानून मांग करता है।

ग. प्रश्न III पर, यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित निरोध आदेश ऐसी सामग्री पर आधारित हैं जो वैध और स्पष्ट रूप से "लोक व्यवस्था" से संबंधित हैं, जैसा कि केवल एक "कानून और व्यवस्था" की स्थिति से भिन्न है। कथित गतिविधि और उसके बाद के परिणाम—नामजद मोहल्लों में समुदाय-व्यापी भय और व्यवहार में परिवर्तन, हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच अंतर-सामुदायिक तनाव, सांप्रदायिक हिंसा का वास्तविक जोखिम, दंगा नियंत्रण अभ्यास और शांति समिति के हस्तक्षेप सहित असाधारण प्रशासनिक प्रतिक्रिया, और लोक व्यवस्था के नष्ट होने का समकालीन स्थानीय आसूचना इकाई का मूल्यांकन—सामूहिक रूप से सामुदायिक जीवन के सुचारु गति की अशांति को स्थापित करते हैं जो एक पृथक आपराधिक अपराध से कहीं आगे जाता है। चैत्र नवरात्रि के पहले दिन, ईद की पूर्व संध्या के साथ मेल खाने वाली घटना की समय-सीमा, उस संदर्भ की सांप्रदायिक संवेदनशीलता को और रेखांकित करती है जिसमें कथित कृत्य कारित किए गए थे और रिहाई पर भविष्य के पूर्वाग्रहपूर्ण आचरण की आशंका को बल देती है।

111. इसलिए यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित निरोध आदेश अमीना बेगम बनाम तेलंगाना राज्य²⁷ में निर्धारित मानकों को संतुष्ट करते हैं, और लोक व्यवस्था की अशांति को प्रदर्शित करने वाली प्रासंगिक और सन्निकट सामग्री पर आधारित हैं। वैधानिक समय-सीमाओं और अभ्यावेदन की आवश्यकताओं का भी अनुपालन किया गया है। परिणामस्वरूप, आक्षेपित निरोध आदेश किसी ऐसी प्रक्रियात्मक या कानूनी दुर्बलता को प्रकट नहीं करते हैं जो इस न्यायालय द्वारा अपने रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप का औचित्य सिद्ध करे। अतः, उपर्युक्त के आलोक में, याचिकाओं को स्वीकार करने और उसमें मांगी गई प्रार्थनाओं की अनुमति देने के कोई ठोस कारण नहीं हैं। उपर्युक्त शर्तों के साथ, याचिकाएं खारिज की जाती हैं।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



112. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, भी तदनुसार निस्तारित किए जाते हैं।

113. यह स्पष्ट किया जाता है कि यहाँ की गई किसी भी टिप्पणी का किसी अन्य न्यायालय के समक्ष किसी अन्य कार्यवाही के दौरान मामले के गुण-दोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

114. निर्णय को तुरंत वेबसाइट पर अपलोड किया जाए।

(देवेंद्र सिंह-प्रथम, न्यायमूर्ति) (चंद्र धारी सिंह, न्यायमूर्ति)

26 फरवरी, 2026

अतुल

Translated version. Not for Legal Use.

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"